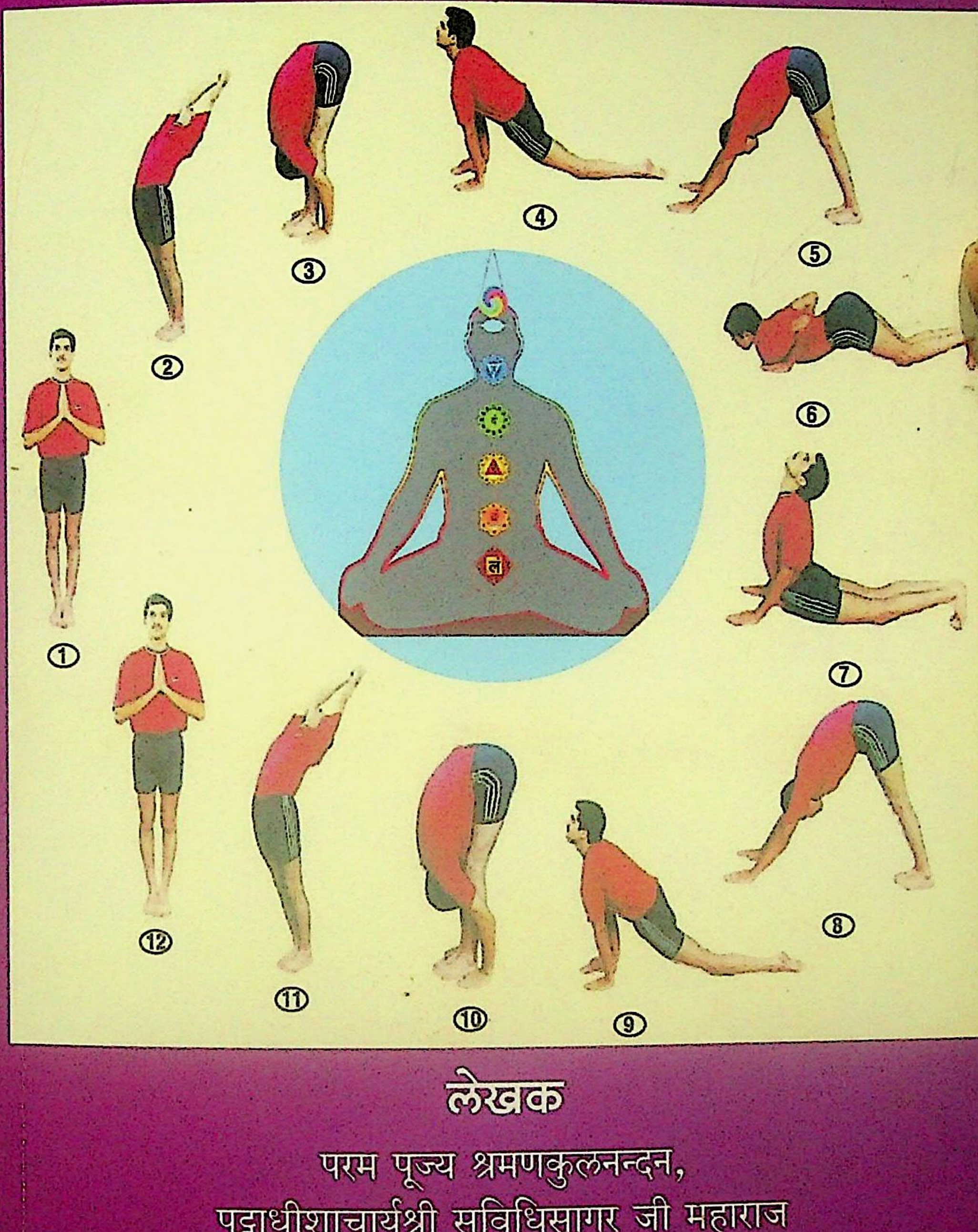
सुविधि
आसनचिकित्सा



लेखक

परम पूज्य श्रमणकुलनन्दन,
पट्टाधीशाचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

गणधराचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

रजत दीक्षा जयन्ती 25 महोत्सव कुन्थुगिरी

स्थल : श्री गणाधिपति, गणधराचार्यश्री
कुन्थुसागर विद्या शोध संस्थान, कुन्थुगिरी

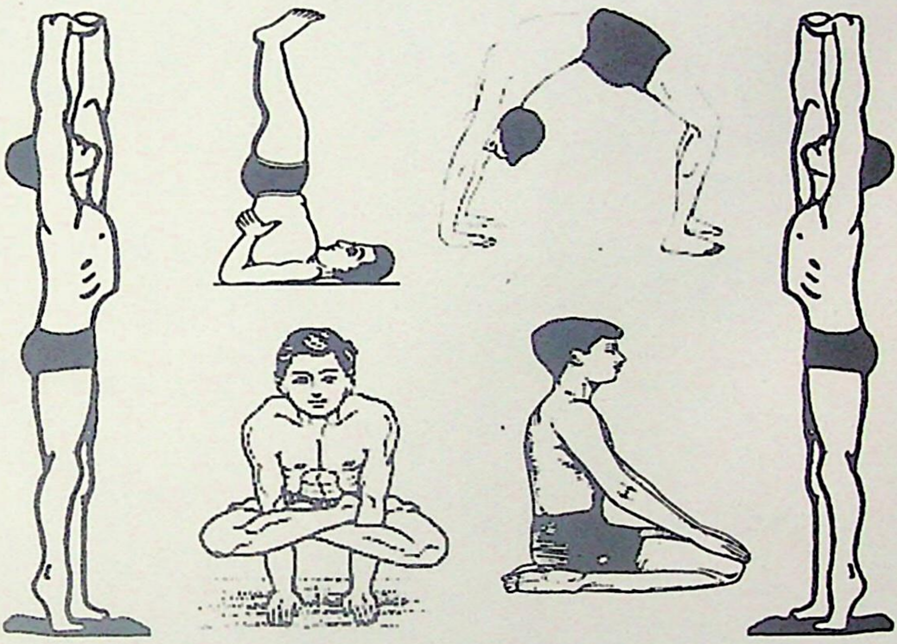
इस पुस्तक के पुण्यार्जक

परम पूज्य चारित्र-चक्रवर्ती, आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज (अंकलीकर) की सुविशुद्ध परम्परा के चतुर्थ-पट्टाधीश, परम पूज्य भवसागरपारग आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज के रजत दीक्षाजयन्ती के पावन अवसर पर आचार्यश्री को भावपूर्ण विनयांजलि अर्पित करते हैं।

विजयकुमार शिखरचन्द काला

बालाजी नगर
औरंगाबाद (महाराष्ट्र) ४३१००१
९८२२०६४६२९

सुविधि आसनचिकित्सा



लेखक

परम पूज्य श्रमणकुलनन्दन,

पट्टाधीशाचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

सुविधि आसनचिकित्सा

लेखकः- परम पूज्य जिनवाणीवरदपुत्र,
पट्टाधीशाचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

संस्करण - प्रथम = ११-५-२०१३ (१००० प्रति)

अवसर

परम पूज्य चारित्र-चक्रवर्ती, आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज (अंकलीकर) की सुविशुद्ध परम्परा के चतुर्थ पट्टाधीश परम पूज्य आर्षमार्गशिरोमणि, जिनशासनप्रदीप, विद्या-वाचस्पति, तपश्चर्या-चक्रवर्ती, परम्पराचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज का पच्चीसवाँ दीक्षादिवस

पुनः प्रकाशन हेतु अर्थसहयोग - रुपये ३५/- मात्र

प्राप्तिस्थान - भरतकुमार इन्दरचन्द पापड़ीवाल
३-४-१, पानदरिबा रोड़, अप्पा हलवाई के पास
औरंगाबाद (महाराष्ट्र)४३१००१
फोन = ०२४०-२३६८७८५
मोबाइल = ०९३७११४११०४
sanmati28@yahoo.com
suvidhiguru@gmail.com
suvidhiguru@yahoo.in
Website : www.jaingranths.com

SUVIDHI ASSAN CHIKITSA

PARAMPARACHARYA SHREE SUVIDHISAGAR JI MAHARAJ

समर्पित

परम पूज्य तपोधनधारक,
मिथ्यात्वध्वंसक, सन्मार्गप्रदर्शक,
श्रमणकुलतिलक, आर्षमार्ग-उद्योतक,
सम्यक्त्व-शिरोमणि, मुनिकुंजर,
चारित्र-चक्रवर्ती, आचार्यश्री आदिसागर जी
महाराज (अंकलीकर) की सुविशुद्ध
परम्परा के अधिनायक,
परम पूज्य तीर्थभक्त-शिरोमणि,
अध्यात्मदूत, निजात्मरसास्वादी,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी
महाराज के पट्टधर,
परम पूज्य सिद्धान्त-चक्रवर्ती,
अध्यात्मकुलदीपक, युगनायक,
महातपोमार्तण्ड, गुरुभक्त-शिरोमणि,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी
महाराज की परम पुनीत
स्मृति में--



आशीर्वाद



यह भारतभूमि सदा ही साधु-सन्तों के अवतरण, निष्क्रमण, आचरण एवं साधना से पवित्र/पावन/पुनीत होती रही है। भूतकाल की भाँति वर्तमानकाल में भी अनेक भव्य जीव अपनी आत्मा का उद्धार कर रहे हैं। उन्हीं में से मुनिकुंजर, समाधि-सम्राट्, अप्रतिम उपसर्गविजेता, आदर्श तपस्वी, महामुनि, दक्षिण भारत के वयोवृद्ध सन्त, आचार्य-परमेष्ठी श्री आदिसागर जी महाराज (अंकलीकर), उनके पट्टाधीश, आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज, उनके शिष्य वात्सल्य-रत्नाकर, आचार्यश्री विमलसागर जी महाराज-इन महापुरुषों की जीवनप्रणाली आगमोक्त रही है। इन्होंने स्वात्महित के साथ परहित भी किया है तथा अपनी तपोपूत आत्मा से भव्य आत्माओं को उपदेश दिया है। वह उपदेश ग्रन्थों के रूप में लिपिबद्ध है।

आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज (अंकलीकर) ने भाद्रपद शुक्ला ४, वि. सं. १९२३ सन् १८६६ को महाराष्ट्र के अंकली ग्राम में जन्म लिया। मगसिर शुक्ला २, वि. सं. १९७० सन् १९१३ को सिद्धक्षेत्र कुन्थलगिरि पर मुनिदीक्षा ली। जेष्ठ शुक्ला ५, वि. सं. १९७२ सन् १९१५ को जयसिंगपुर (काडगीमला-ऊदगाँव) में आचार्यपद को ग्रहण किया। फाल्गुन कृष्णा १३, वि. सं. २००० सन् १९४४ को ऊदगाँव (कुंजवन) में समाधिमरण किया। उन्होंने अपने दीक्षाकाल में **प्रायश्चित्त विधान** (प्राकृत) को भाद्रपद शुक्ला ५, वि. सं.१९७२ सन् १९१५, **दिव्यदेशना** (कन्नड) को मगसिर शुक्ला ११, वि. सं.१९९९ सन् १९४१, **जिनधर्मरहस्य** (संस्कृत) को मगसिर शुक्ला २, वि.सं.१९९९ सन् १९४२, **शिवपथ** (संस्कृत) को भाद्रपद शुक्ला ४, वि. सं. २००० सन् १९४३, **वचनामृत** (मराठी) को माघ शुक्ला १४, वि. सं. २००० सन् १९४३, **उद्बोधन** (कन्नड) फाल्गुन शुक्ला ११, वि. सं. २००० सन् १९४३, **अन्तिम दिव्यदेशना** (कन्नड) को फाल्गुन कृष्णा १३, वि. सं. २००१ सन् १९४४ में पूर्ण किया।

आचार्यश्री के पट्टाधीश, आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज ने वैशाख कृष्णा ९, वि. सं. १९६७ सन् १९१० को फिरोजाबाद में जन्म लिया। फाल्गुन

शुक्ला ११, वि. सं. २००० सन् १९४३ को ऊदगाँव में मुनिदीक्षा ग्रहण की। आश्विन शुक्ला १०, वि. सं. २००० सन् १९४३ को आचार्यपद ग्रहण किया। माघ कृष्णा ६, वि. सं. २०२८ सन् १९७२ को मेहसाना में समाधि प्राप्त की।

आचार्यश्री ने परम्परागत ज्ञान से अपने दीक्षाकाल में **प्रायश्चित्त विधान** (संस्कृत) को फाल्गुन शुक्ला १३, वि. सं. २००९ सन् १९५२, **वचनामृत** (अंग्रेजी) **वर्डस् ऑफ नेक्टर** (Words of Nector) को मगसिर कृष्णा १०, वि. सं. २००० सन् १९४३, **धर्मानन्द श्रावकाचार** (हिन्दी) को चैत्र शुक्ला १३, वि. सं. २००० सन् १९४३, **प्रबोधाष्टक** (संस्कृत स्वोपज्ञ टीकासहित) को फाल्गुन कृष्णा ११, वि. सं. २००४ सन् १९४७, **शिवपथ टीका** को मगसिर कृष्णा १०, वि. सं. २००४ सन् १९४७ **जिनधर्मरहस्य** (हिन्दी टीका) को फाल्गुन शुक्ला १३, वि. सं. २०१० सन् १९५४, **चतुर्विंशति स्तोत्र** (संस्कृत) को मगसिर शुक्ला ११, वि. सं. २०१८ सन् १९६१ इनकी रचना की।

आचार्यश्री विमलसागर जी महाराज ने आश्विन कृष्णा ७, वि. सं. १९७२ सन् १९१५ को कोसमा में जन्म लिया। फाल्गुन शुक्ला १३, वि. सं. २००९ सन् १९५२ को सोनागिरि में मुनिदीक्षा ग्रहण की। मगसिर कृष्णा २, वि. सं. २०१८ सन् १९६० को टुण्डला में आचार्यपद प्राप्त किया। पौष कृष्णा १२, वि. सं. २०५१ सन् १९९४ को सम्मेदशिखर में समाधिमरण किया। आपने दीक्षाकाल में प्राप्त हुयेपरम्परागत ज्ञान को लिपिबद्ध किया। **जिनवाणी का वैभव** (हिन्दी) को कार्तिक शुक्ला १५, वि. सं. २००८ सन् १९५१, **हे आचार्य आदिसागर अंकलीकर** (हिन्दी) कार्तिक कृष्णा १०, वि. सं. २०३९ सन् १९८२, **सन्देश** (हिन्दी) अश्विन शुक्ला ९, (२३ अक्टूबर) को वि. सं. २०५० सन् १९९३ को प्रतिपादन कर पूर्ण किया।

सन्देश –

हमारी आचार्य परम्परा में प्रथम मुनिकुंजर आचार्य आदिसागर जी (अंकलीकर) हैं। आप आचार्य महावीरकीर्ति जी के दीक्षागुरु हैं। आचार्य आदिसागर जी (अंकलीकर) ने अपना आचार्यपद महावीरकीर्ति जी को दिया है।

जैन समाज में आचार्य आदिसागर जी (अंकलीकर) की परम्परा और आचार्य शान्तिसागर जी (दक्षिण) की परम्परा इस युग में निर्बाध चली आ रही है। समाज का कर्तव्य है कि किसी प्रकार का विवाद न करके दोनों आचार्य परम्परा को आगमसम्मत मान कर वात्सल्य से धर्मप्रभावना करें।

आचार्य सुविधिसागर जी ने आसनों के माध्यम से चिकित्सा की पद्धति को लिपिबद्ध किया है। यह उनका प्रयत्न स्त्युत्य है। आसन ही कायक्लेश तप के साधन बन कर मोक्षमार्ग में निमित्त बनते हैं। धर्म्यध्यान की साधना में आसनों का महत्त्व विस्मरणीय नहीं हो सकता। यह कृति सर्वोपयोगी सिद्ध होगी-इसका हमें पूर्ण विश्वास है।

लेखक महोदय आचार्य सुविधिसागर जी हैं। आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज (अंकलीकर) से आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज ने ज्ञान को प्राप्त किया। आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज से आचार्यश्री विमलसागर जी महाराज ने ज्ञान प्राप्त किया। आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज तथा आचार्यश्री विमलसागर जी महाराज से मुझे जो ज्ञान प्राप्त हुआ, उसे सुविधिसागर जी ने प्राप्त किया है। इस प्रकार हमारे शिष्य ने परम्परागत ज्ञान प्राप्त करके प्रस्तुत कृति को ग्रन्थित किया है।

इस प्रकाशन के लिये मेरा शुभाशीर्वाद है।

- आचार्य सन्मतिसागर

कुंजवन २०१०

आसनविषयक विशेष नियम

- प्राणायाम का अभ्यास करने के उपरान्त ही आसन करने चाहिये।
- आसन का समय और संख्या निश्चित होनी चाहिये।
- यदि संख्याओं की वृद्धि करनी हो तो एक-एक, दो-दो संख्या बढ़ानी चाहिये।
- पुरुषों को लंगोट पहन कर ही आसन करने चाहिये।
- आसनों का क्रमविशेष ध्यान में रखना चाहिये, क्योंकि एक आसन के बाद उसका पूरक आसन किया जाता है। जैसे- मत्स्यासन के बाद हलासन।
- आसन के बाद मूत्रविसर्जन की क्रिया अवश्य पूर्ण करनी चाहिये, जिससे शरीर में एकत्र हुआ मल मूत्र द्वारा बाहर निकल सके।
- किसी को बद्धकोष्ठता पीड़ित कर रही हो तो उसे आधा किलो पानी पीकर भुजंगासनादि आसन करने चाहिये।

– परम्पराचार्य सुविधिसागर

मनोगत

स्थिर सुखमासनम्। शरीर का किसी एक स्थिति में सुखपूर्वक रहने को आसन कहते हैं। स्वास्थ्यलाभ और ध्यानसिद्धि के लिये आसन बहुत आवश्यक हैं। आसन शरीर की सहनशीलता के विकासक हैं। आसनों से रोगप्रतिरोधात्मक शक्ति का तीव्रगति से विकास होता है।

समय :- शौच आदि दैनिक क्रियाओं से निवृत्त होने के बाद आसन करने चाहिये। आसन और स्नान में लगभग एक घण्टे का अन्तराल होना चाहिये। आसन पन्द्रह मिनट से तीस मिनट तक किये जाने चाहिये।

काल :- आसनों के लिये सूर्योदय के पूर्व का काल उचित माना गया है। सायंकाल में अथवा सूर्यास्त के बाद भी आसन किये जा सकते हैं। तेज धूप में आसन नहीं करने चाहिये। वज्रासन भोजन के बाद भी किया जा सकता है।

भोजन :- आसन की क्रिया सम्पन्न करने के लिये साधक का पेट खाली होना आवश्यक है। आसन के बीस मिनट बाद पेयाहार लिया जा सकता है। लगभग एक घण्टे बाद ही पूर्णाहार लेना चाहिये। आहार लेने के बाद यदि आसन करने हो तो कम से कम तीन घण्टे बाद करना चाहिये।

स्थान :- आसन के लिये स्वच्छ, हवादार, दुर्गन्धरहित, शान्त और एकान्त स्थान का चयन करना चाहिये।

श्वासक्रिया :- आसन की आरम्भिक स्थिति में श्वास सम होनी चाहिये। गति लयबद्ध होनी चाहिये। शेष विधि निर्देशानुसार करनी चाहिये।

चेतना का जागरण :- तटस्थतापूर्वक अंग-प्रत्यंगों का अवलोकन करना चाहिये। आसन के समय में सिर तनावरहित व सजग होना चाहिये।

आसन-समय :- प्रारम्भ में अल्प समय में प्रत्येक आसन का समापन कर क्रमानुसार समय की वृद्धि करनी चाहिये।

अंगविन्यास :- आसन करते समय शरीर को झटके नहीं लगने चाहिये।

आसन यद्यपि लाभकारी चिकित्सापद्धति है, तथापि अनेक अवस्थाओं में इसका निषेध किया गया है। यथा-

❀ किसी रोग से पीड़ित व्यक्ति, लम्बी बीमारी से मुक्त हुये व्यक्ति, गर्भवती स्त्री, बहुत अधिक अस्वस्थ शरीर वाले, भोग-विलास में लिप्त, ज्वरग्रस्त, लम्बे समय से सर्दी-जुकाम से पीड़ित, जिसका कान बहता हो, जिसके नेत्रों में लाली आ गयी हो, हृदयरोगी, भूख-प्यास से ग्रस्त पुरुषों व महिलाओं को आसन नहीं करने चाहिये। यदि करने हो तो चिकित्सक के सहयोग से आसन करने चाहिये। जिनका पूर्वाभ्यास हो, उन्हीं सरल आसनों का प्रयोग करना चाहिये।

❀ स्नायविक दौर्बल्य और हृदय की दुर्बलता से युक्त जीव को शीर्षासन जैसे कठिनतम आसन नहीं करने चाहिये।

❀ अण्डवृद्धि वालों को ऐसे आसन नहीं करने चाहिये, जिसमें नाभि के निचले भागों पर जोर पड़ता हो।

❀ उच्च रक्तचाप वाले रोगियों को सिर के बल पर किये जाने वाले आसन नहीं करने चाहिये।

❀ महिलाओं को मासिकधर्म के दिनों में आसन नहीं करने चाहिये तथा मयूरासन और सिद्धासन जैसे आसन उन्हें कभी नहीं करने चाहिये। गर्भ के चार माह व्यतीत होने पर कठिन आसन नहीं करने चाहिये।

❀ जिनको कमर, पीठ और गरदन में पीड़ा रहती हो, उन्हें आगे झुकने वाले आसन नहीं करने चाहिये।

निरोगी जीवन जीने के इच्छुक पुरुष को नियमित रूप से आसनों का अभ्यास करना चाहिये।

आसनों की संख्या के विषय में पर्याप्त मतभेद हैं। आसनविदों ने आसनों के विषय में अपने-अपने अनुभव प्रस्तुत करते हुये अनेक कृतियों का निर्माण किया। दिगम्बर जैनागमों में कायक्लेश और ध्यान इन दो तपों के प्रकरण में आसन शब्दों का प्रयोग प्रचुरता से पाया जाता है। किन्तु, उस पर कोई स्वतन्त्र कृति देखने में नहीं आयी। विचार था कि लगभग दो सौ आसनों पर बृहत्काय कृति का निर्माण करूँ। किन्तु, संघ के आग्रहवशात् केवल छत्तीस आसनों के परिचय को प्रकाशन की स्वीकृति देनी पड़ी। भविष्य में वह भी स्वप्न साकार करने का प्रयत्न करूँगा।

यह कृति आपके लिये मार्गदर्शन कर पाये तो श्रम सार्थक होगा। [illegible] सुविधिसागर

अनुक्रमणिका

आगम में आसनों का उल्लेख

चरणानुयोग के ग्रन्थों में आसनों के नाम पाये जाते हैं। यथा-

उत्कुटिकापर्यङ्कवीरासनमकरमुखाद्यासनम्।

(मूलाचार = ३५६ की टीका)

अर्थात् :- उत्कुटिकासन, पर्यंकासन, वीरासन, मकरमुखासन आदि आसन हैं।

पर्यङ्कमर्द्धपर्यङ्कं, वज्रं वीरासनं तथा।
सुखारविन्दपूर्वे च, कायोत्सर्गश्च सम्मतः।।

(ज्ञानार्णव = १३११)

अर्थात् :- पर्यंकासन, अर्द्धपर्यंकासन, वज्रासन, वीरासन, सुखासन और कमलासन ये आसन ध्यान के लिये अभीष्ट माने गये हैं।

समपलियंकणिसेज्जा समपदगोदोहिया य उक्कुडिया।
मगरमुहहत्थिसुंडी गोणिसेज्जद्धपलियंका।।
वीरासण च दंडा य ---

(भगवती आराधना = २२६-२२७)

अर्थात् :- समपर्यंकासन, समपदासन, गोदोहासन, उत्करिकासन, मकरमुखासन, हस्तिसुण्डासन, पर्यंकासन, अर्द्धपर्यंकासन, वीरासन, दण्डासन--।

निश्चयेनात्मन अनन्येवस्थानं यत् तदासनमित्युच्यते। लोकव्यवहारेण तदवस्थानसाधनाङ्गत्वेन यमनियमाद्यष्टाङ्गेषु मध्ये शरीरालस्यग्लानिहानाय नानाविधतपश्चरणभारनिर्वाहक्षमं भवितुं तत्पाटवोत्पादनाय यन्निर्दिष्टं पर्यङ्कार्द्धपर्यङ्कवीरवज्रस्वस्तिकपद्मकादिलक्षणमासनमित्युच्यते।

(आराधनासार = २६)

अर्थात् :- निश्चयनय से आत्मा का स्वकीय स्वभाव में स्थिर रहना ही आसन है। लोकव्यवहार के अनुसार स्वकीय स्वभाव में स्थिर रहने के निमित्तभूत यम, नियमादि आठ अंगों के मध्य में शरीर का आलस्य और ग्लानि को दूर करने के लिये, अनेक प्रकार के तपश्चरण के भार को वहन करने के लिये तथा स्व में स्थिरता लाने की पटुता को उत्पन्न करने के लिये शास्त्र में निर्दिष्ट पर्यंकासन, अर्द्धपर्यंकासन, वीरासन, वज्रासन, स्वस्तिकासन, पद्मासन आदि अनेक प्रकार के आसन कहे गये हैं।



अर्द्ध मत्सेन्द्रासन

विधि :-

जमीन पर बैठ कर अपने पैरों को सामने की ओर फैला दीजिये। बाये पैर को घुटने से मोड़ कर एड़ी को गुदाद्धार के नीचे लगाइये। पैर के तलुवे को दायी जंघा के साथ लगा दीजिये। तदुपरान्त दाये पैर को घुटने से मोड़ कर खड़ा कर दीजिये। उसे बाये पैर की जंघा के ऊपर से ले जाते हुये जंघा के ऊपरी भूमि पर रख दीजिये। अब, बाये हाथ को दाये पैर के घुटने से पार करके अर्थात् घुटने को बगल में दबाते हुये हाथ से दाये पैर का अंगुठा पकड़ लीजिये। धड़ को दायी ओर ऐसा मोड़े कि बाये कन्धे का दबाव दाये पैर के घुटने पर पड़ता रहे। फिर दाये हाथ को पीठ के पीछे से घुमा कर बाये पैर की जंघा का नीचले भाग को पकड़ लीजिये। सिर को दाये भाग में इतना घुमाइये कि ठोड़ी और बाया कन्धा एक सीधी रेखा में आ जाये। छाती को तान कर ही रखिये। नीचे की ओर झुकना भी नहीं है।

विशेष बात यह है कि कमर को मोड़ते समय रेचक करना चाहिये। आसन की अन्तिम अवस्था में गहरी श्वास खींच कर पूरक करना चाहिये।

कुछ देर इस आसन की अवस्था में रह कर धीरे-धीरे पूर्वावस्था में आना चाहिये। पूर्ववर्ती स्थिति में आते समय रेचक करना चाहिये।

यह उक्त आसन की पहली आवृत्ति है। दूसरी आवृत्ति के लिये दाये पैर का प्रयोग करना चाहिये। दो आवृत्तियों में यह आसन पूर्ण होता है।

समय :-

इस आसन को दिन में एक बार करना चाहिये। पीठ की मांसपेशियाँ पर्याप्त लचीली हो जाने पर प्रत्येक ओर से कम से कम एक से दो मिनिट तक इस आसन में स्थिर रहना चाहिये। आरम्भ में पाँच/दस सेकन्द तक करना पर्याप्त है।

लाभ :-

कमजोर वृक्क और मूत्राशय की निर्बल पेशियों के लिये यह आसन अत्यन्त गुणकारी माना जाता है।

यह आसन कब्ज एवं अजीर्ण में लाभकारक होने से पाचनसंस्थान को स्वस्थ बनाने में सहयोग प्रदान करता है।

आमाशय, प्लीहा, मूत्राशय, छोटी आँत, अग्न्याशय और मधुमेह जैसे रोगों के लिये यह आसन अत्युपयोगी होता है।

इस आसन से कमर और पीठ के दर्द दूर होते हैं।

यह आसन मेरुदण्ड को लचीला बनाता है।

यह आसन पीठ की मांसपेशियों की मालिश करता है। यह नाड़ियों को शक्ति प्रदान करता है।

वात के रोग को दूर करने में यह आसन अपूर्व सहयोग करता है।

पीठ में स्थित अनेक नाड़ियों के लिये यह आसन शक्तिदाता है।

सम्पूर्ण शरीर में फैली हुयी मस्तिष्क से सम्बन्धित नाड़ियों को यह आसन शक्तिशाली और स्वस्थ बनाता है। इस प्रकार समस्त नाड़ीसंस्थान पर इस आसन का अच्छा प्रभाव पड़ता है।

इस आसन के अभ्यास से उदररोगों को भली-भाँति गति मिलती है, जिससे जठराग्नि प्रज्वलित होकर क्षुधा में वृद्धिं होती है।

विकृत हुये यकृत और प्लीहा के लिये यह आसन लाभकारी है।

यह आसन सन्धिस्थानों के कष्टों को दूर करता है।

इस आसन को स्मरणशक्ति का विकासक माना गया है।

सावधानियाँ :-

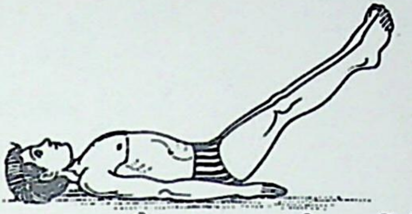
इस आसन को करते समय हाथ, पैर मोड़ना पड़ता है। उस समय अत्यन्त सजग रहना चाहिये। किसी भी प्रकार की शीघ्रता उचित नहीं है।

इस आसन को करते समय वार्तालाप नहीं करना चाहिये।

इस आसन को करते समय शरीर को थकाना नहीं चाहिये।

गर्भवती स्त्रियों को यह आसन नहीं करना चाहिये।

इस आसन के उपरान्त थके हुये शरीर को विश्राम देने के लिये सुखासन का प्रयोग करना चाहिये।



उत्तानपादासन

उत्तान और पाद इन दो शब्दों के संयोग से उत्तानपादासन इस शब्द की निष्पत्ति हुयी है।

उत्तान शब्द का अर्थ है-ऊपर की ओर। पाद शब्द का अर्थ है-पैर।

जिस आसन में पैरों को ऊर्ध्वदिशा की ओर फैलाया जाता है, उस आसन को उत्तानपादासन कहते हैं।

विधि :-

सर्वप्रथम पीठ के बल से जमीन पर लेट जाइये। दोनों हथेलियों से जमीन छूते हुये दोनों को अगल-बगल में भली-भाँति फैला दीजिये तथा दोनों पैरों के अंगूठों को मिला दीजिये। पैरों को तान कर रखिये।

तदुपरान्त गहरी श्वास लेकर दोनों पैरों को धीरे-धीरे इतना ऊपर उठाइये कि कमर भूमि से लग जाये तथा पैर लगभग दस-बारह इंच ऊँचे हो। श्वास को जितनी देर तक रोक सके, उतनी देर तक पैर ऊपर रखना चाहिये। घबराहट हो, उसके पहले ही धीरे-धीरे पैर भूमि पर रखने चाहिये। शरीर को शिथिल करके श्वास छोड़िये।

यह विशेषरूप से ध्यान रखना चाहिये कि पूर्वावस्था में आने के समय क्रमशः पुनरागमन करना चाहिये तथा शरीर को झटका नहीं देना चाहिये।

समय :-

इस आसन को आरम्भ में सात से दस सेकन्द तक कर सकते हैं। क्रमशः बढ़ाते हुये इसे दो मिनट तक बढ़ाया जा सकता है।

लाभ :-

यह आसन पेट की समस्त भीतरी एवं बाहरी पेशियों को व्यायाम देता है, जिसके कारण पेन्क्रियाज की विकृतियाँ दूर होती हैं।

इस आसन को करने से कब्ज दूर होता है।

यह आसन चर्बी घटाता है।

इस आसन का प्रतिदिन अभ्यास करने से उदरवायु, अपचन और आँतों की व्याधियाँ ठीक होती हैं।

कमर और पीठ के कष्टों को दूर करने के लिये यह आसन अतिशय उपयोगी माना गया है।

यह आसन कमर और टांगों को बलशाली बनाता है।

यह आसन वीर्यवर्द्धक है-ऐसा मनीषियों का मत है।

इस आसन को करने से नितम्ब और जंघाओं की सन्धियों को बल मिलता है।

यह आसन सुषुम्ना में बल को उत्पन्न करता है।

इस आसन को करने से प्रजननविषयक ग्रन्थियों की सक्रियता बढ़ती है।

इस आसन के अभ्यास से स्मरणशक्ति की आशातीत वृद्धि होती है।

इस आसन को करने से भूख बढ़ती है।

इस आसन से मोटापा झड़ता है।

मस्तिष्कविषयक विकृतियों को दूर करने के लिये यह आसन अत्यावश्यक माना गया है।

नेत्रों से सम्बन्धित जितने विकार हैं, उन पर यह आसन रामबाण औषधि के रूप में स्वीकार किया गया है।

श्वास और रक्त के विकारों को दूर करना हो तो इस आसन को प्रतिदिन नियमपूर्वक करना चाहिये।

मासिकधर्मगत दोषों को दूर करने के लिये स्त्रीवर्ग के द्वारा यह आसन किया जाना चाहिये।

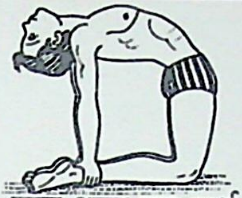
सावधानियाँ :-

इस आसन को करते समय पैरों को उठाने में शीघ्रता नहीं करनी चाहिये। घबराहट होने से पहले ही पैरों को नीचे कर लेना चाहिये।

यदि इस आसन को करते समय जंघाओं में कुछ पीड़ा का अनुभव हो तो आसन का समापन कर देना चाहिये।

जितने मिनट तक यह आसन किया जाता है, उससे आधे समय तक पूर्णरूप से विश्राम करना चाहिये।

इस आसन के उपरान्त सुखासन करना लाभदायक है।



उष्ट्रासन

उष्ट्र शब्द का अर्थ ऊँट है। ऊँट की गरदन ऊपर की ओर उठी रहती है। इस आसन को करते समय ऊँट के समान ही ग्रीवादेश को ऊपर उठाया जाता है। अतः इस आसन को उष्ट्रासन कहते हैं।

विधि :-

दोनों घुटनों को मोड़ कर टाँगों को पीछे की ओर ले जाइये। पावों पर पंजे के बल से बैठ जाइये। नितम्बों का भार पंजों पर पड़ना चाहिये तथा घुटने से घुटना और एड़ी से एड़ी मिली रहनी चाहिये।

अब, धीरे-धीरे घुटनों से ऊपर सिर तक के भाग को ऊपर की ओर उठाना है। यह क्रिया करते समय कुहनियाँ सीधी रहनी चाहिये। तदुपरान्त श्वास को भीतर भरते हुये छाती को ऊपर की ओर उठाइये। सिर को पीछे की ओर ले जाइये। ठोड़ी आकाश की ओर रहनी चाहिये। गरदन अधिक से अधिक तनी हुयी होनी चाहिये। इस विधि में लगभग आधा मिनट तक स्थिर रहना चाहिये। धीरे-धीरे स्वाभाविक दशा को प्राप्त कर लगभग दो मिनट तक विश्राम करना चाहिये। इस आसन की प्रतिदिन तीन आवृत्तियाँ करनी चाहिये।

समय :-

आरम्भिक अवस्था में इस आसन को करने में लगभग एक मिनट का समय लगना चाहिये। अभ्यास की दशा में इस समय को क्रमशः तीन से चार मिनट तक बढ़ाया जा सकता है।

लाभ :-

इस आसन का अभ्यास मेरुदण्ड के कड़ेपन को दूर करता है।

इस आसन का अभ्यासी साधक बुढ़ापे को दूर करता है।

यह आसन ग्रीवा को दृढ़ बनाता है।

इस आसन को करने से जीवनीशक्ति की आशातीत वृद्धि होती है।

स्त्रीरोगों में इस आसन के प्रयोग को सर्वोत्तम माना है।

कटिशूल व पृष्ठशूल को नष्ट करने के लिये यह आसन अत्युपयोगी है।

कटि और उदर की चर्बी को छाँटने के लिये प्रतिदिन नियमितरूप से इस आसन को करना चाहिये।

इस आसन का नित्य अभ्यास करने से कामेन्द्रियाँ पुष्ट होती हैं।

कण्ठरोग, श्वासरोग और हृदयरोग का विनाश इस आसन के द्वारा होता है।

इस आसन को करने से सीना विशाल बनता है।

इसके नियमित अभ्यास से कान्ति और बल का विकास होता है।

भुजदण्ड को सबल बनाने के लिये यह आसन सहयोगी बनता है।

इस आसन को विधिवत् लगाने से घुटनों, जंघाओं, पक्वाशय, उदरपेशियों, वक्ष, फैंफड़ों और ग्रीवा का व्यायाम उत्तम रीति से होता है। फलतः इस आसन को करने वाला इन अवयवों विषयक रोगों से मुक्त रहता है।

कब्ज, उदरवायु, अग्निमान्द्य, अपचन आदि विषयक समस्त दोषों का उपशमन इस आसन के द्वारा होता है।

इस आसन को करने से घुटनों के ऊपर का शारीरिक भाग तनाव में आता है। इससे ऊपरी अवयवों पर अत्यधिक सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

शरीर के अधःभाग पर भी यह आसन अपना प्रभाव छोड़ता है। फलतः पैरों की पिण्डलियों और पंजों का भी व्यायाम इस आसन के द्वारा होता है।

शारीरिक लचक को बढ़ाने में यह आसन अत्यन्त सहयोगी है।

इस आसन को सम्पन्न करने के उपरान्त जब शरीर सामान्य अवस्था में आता है, तब रक्तप्रवाह अत्यधिक मात्रा में बढ़ जाता है। इससे रक्त का शुद्धिकरण भी सम्यक् होता है और प्रत्येक अवयव को सम्यक् मात्रा में मिलता भी है।

गैस, खट्टी डकारें, पाचनरोग आदि दुष्ट रोगों का विनाश करने के लिये इस आसन को करना आवश्यक है।

उदररोगों के लिये तो इससे अच्छा आसन कौनसा हो सकता है?

सावधानियाँ :-

यह आसन सर्वांगासन का विपरीत आसन है। अतः इसे सर्वांगासन के उपरान्त करना, अधिक लाभदायक है।

इस आसन के उपरान्त विश्राम की दृष्टि से सुखासन करना चाहिये।

गर्भवती महिलाओं को यह आसन नहीं करना चाहिये।

हर्निया और सियाटिका के रोगियों को यह आसन नहीं करना चाहिये।



एकपादप्रणामासन

विधि :-

समतल पृथ्वी पर शान्त चित्त से खड़े हो जाइये। पश्चात् एक पैर दूसरे पैर की जंघा पर रखिये तथा दोनों हथेलियों को छाती के सामने जोड़े अर्थात् प्रार्थनामुद्रा बनाइये। सिर को सीधा रखना चाहिये तथा दृष्टि भी सीधी रखनी चाहिये। यथासम्भव इस स्थिति में रह कर पुनः खड्गासन की स्थिति में आना चाहिये।

दूसरे चरण में पैर बदल कर यही क्रिया करनी चाहिये। इस प्रकार यह आसन दो चरणों में पूर्ण होता है।

समय :-

जितनी अवधि तक इस आसन को किया जा सकता है, उतनी अवधि तक उक्त आसन का अभ्यास किया जा सकता है। प्रारम्भ में १०/१५ सैकिण्ड तक करना उचित है। तत्पश्चात् अभ्यास को बढ़ाते हुये अपनी शक्ति के अनुसार अवधि का निर्द्धारण कर लेना चाहिये।

लाभ :-

स्नायु-संस्थान के सन्तुलन को कायम रखने के लिये यह आसन अत्यन्त उपयोगी माना गया है।

यह आसन पैरों, तलवों और टखनों की मांसपेशियों को सशक्त बनाता है।

इस आसन को करने से मानसिक तनाव दूर होता है।

आलस्य दूर करने के लिये इस आसन का अभ्यास उपयोगी है।

यह आसन शरीर के सभी जोड़ों के लिये लाभदायक है।

सावधानी :-

इस आसन को करते समय जो पैर पृथ्वीतल पर स्थित है, उस पैर का पूर्ण ध्यान रखना चाहिये। अन्यथा, वह पैर शरीर का भार न सम्भाल सकेगा और गिरने की सम्भावना होगी।



कुक्कुटासन

संस्कृतभाषीय कुक्कुट शब्द का अर्थ मूर्गा है। इस आसन के समय शरीर की आकृति मूर्गे के समान होती है। अतः इस आसन को कुक्कुटासन कहते हैं।

विधि :-

सर्वप्रथम पद्मासन लगा कर बैठ जाइये। तत्पश्चात् दोनों पैरों के बीच में दोनों ओर त्रिकोन जैसे रिक्त स्थान रहे, उनमें अपने हाथों को घुसाकर दोनों हथेलियों को पृथ्वी पर जमावें।सम्पूर्ण शरीर का भार दोनों हाथों पर डालकर शरीर को जमीन से ऊपर उठाना चाहिये।

समय :-

जितनी देर सम्भव हो, उक्त अभ्यास करें। प्रारम्भ में १०/१५ सैकिण्ड तक करें। तत्पश्चात् अभ्यास को बढ़ाते जाइये।

लाभ :-

यह आसन हाथों की मांसपेशियों को मजबूत बनाता है।

इस आसन से बाँहें कन्धे एवं हाथ पुष्ट एवं सुडौल होते हैं।

इसका प्रतिदिन अभयास करने से पीठ और कन्धों की पीड़ा दूर होती हैं।

यह आसन उदरकृमियों का महाशत्रु है।

शारीरीक उत्साह व मानसिक प्रसन्नता को बढ़ाने में यह आसन अत्यन्त सहयोगी होता है।

रजस्वला अवस्था में होने वाली बेचैनी, आने वाली शिथिलता और अतिशय पीड़ा यह आसन सहज ही दूर कर देता है।

आँतों की दुर्बलता के कारण जो अपानवायु उत्पन्न होती है, उससे पेट फूलता है। यह आसन आँतों की दुर्बलता को दूर करता है।

इस आसन को करने वाले मनुष्य को स्वप्नदोष नहीं होता।

टाईपिस्टों या अंगुलियों से काम करने वालों का यह आसन परम मित्र है।

जिनकी अंगुलियाँ कम्पित होती हैं, उन्हें यह आसन अवश्य करना चाहिये।

इस आसन के द्वारा शारीरिक और मानसिक सन्तुलन की अवस्था को प्राप्त किया जा सकता है।

इस आसन को करने से हाथों का व्यायाम भली-भाँति हो जाता है। फलतः तत्सम्बन्धित दोष दूर होने में सहयोग मिलता है।

इस आसन का अभ्यास करने से पद्मासन, उत्थित पद्मासन, लोलासन, तुलासन से प्राप्त होने वाले लाभ सहज ही प्राप्त होते हैं।

शरीर में उत्साहशक्ति का संचार करने के लिये इस आसन का अभ्यास करना चाहिये।

मानसिक प्रसन्नता का विकास करने के लिये इस आसन को उत्तम और लाभप्रद माना गया है।

स्त्री अथवा पुरुष के कमरभाग से नीचे के अवयवों को बल प्रदान करने में इस आसन का योगदान स्वीकार किया जाता है।

यह आसन लैंगिक क्षमता का विकास करता है।

इस आसन के अभ्यास से कफजरोग दूर होते हैं।

वक्षस्थल का पुष्ट करने में यह आसन बहुमोल है।

इस आसन से वीर्य की रक्षा और वृद्धि होती है।

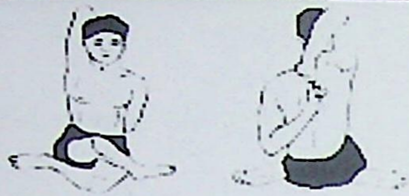
क्रोधादि काषायिक विकारों से दूर रहने के अभीप्सु साधकों को यह आसन प्रतिदिन और प्रयत्नपूर्वक करना चाहिये।

हृदयरोग, क्षय, दमा जैसे रोगों का उच्चाटन करने में इस आसन से पर्याप्त सहयोग प्राप्त होता है।

इस आसन को करने से मुख की सुन्दरता विकसित होती है।

सावधानियाँ :-

कुछ व्यक्तियों के पैरों में अत्यधिक बाल पाये जाते हैं। उन्हें पिण्डलियों और जांघों के मध्य में हाथ डालने में कठिनाई हो सकती है।ऐसे लोग पैरों में तेल लगाकर अथवा स्नान करके यह आसन करना चाहिये। इससे हाथ बालों के ऊपर आसानी से फिसलकर अन्दर जा सकें। ऐसा करने से बालतोड़ नहीं होगा।



गोमुखासन

संस्कृतभाषीय गो शब्द का अर्थ गाय है। जिस आसन को करते समय शरीर की आकृति गाय के मुख के समान होती है, उस आसन को गोमुखासन कहते हैं।

विधि :-

सर्वप्रथम भूमिप्रदेश पर सुखपूर्वक बैठ जाइये। बाये पैर की एड़ी को नितम्ब के पास रखिये। दाये पैर को बायी जंघा के उपर रखिये। घुटने एक दूसरे के ऊपर रहने दीजिये।

पश्चात् बाये हाथ को ऊपर से पीठ के पीछे ले जाइये तथा दाहिने हाथ को भी दाहिने कन्धे पर से पीछे ले जाइये। हाथों को परस्पर बाँध लीजिये। धड़ सीधा लम्बा रहना चाहिये। दोनों हाथों की अंगलियों को परस्पर में फँसाने का प्रयत्न कीजिये।

इस क्रिया के काल में नेत्रों को नासाग्र रखिये। कुछ अवधि तक इस आसन में बैठ जाइये। पश्चात क्रमशः पूर्वस्थिति में आइये।

दूसरी आवृत्ति करते समय दाये पैर की एड़ी को नितम्ब के पास रखिये एवं बाये पैर को दाहिने जंघा के ऊपर रख कर इस आसन को कीजिये।

समय :-

प्रारम्भिक अवस्था में आठ से दस सेकन्द तक इस आसन को कीजिये। अभ्यास हो जाने पर इस अवस्था में जितनी देर तक बैठा जा सकता है, उतना बैठना चाहिये।

लाभ :-

इस आसन को करने से गठियारोग में लाभ होता है।

यह आसन अण्डकोष सम्बन्धित रोग को दूर करता है।

पैरों को निरोगी बनाने में अथवा पैरों की शक्ति का विकास करने में इस आसन से बहुत सहयोग प्राप्त होता है।

मधुमेह के रोगियों को इस आसन का अभ्यास प्रतिदिन करना ही चाहिये।

यह आसन पीठ से सम्बन्धित कष्टों को कम करता है।

कन्धों के कड़े पन को दूर करने में यह आसन अत्युपयोगी है।

यह आसन ग्रीवा के दोषों को दूर करता है।

लैंगिक विकारों से कष्ट पाने वाले रोगियों को प्रतिदिन इस आसन का अभ्यास नियमपूर्वक करना चाहिये।

यह आसन वक्षस्थल को शक्तिशाली बनाता है।

यह आसन वृक्कों को उत्प्रेरित करता है।

इस आसन से साइटिका विषयक कष्ट दूर होता है।

इस आसन को करने से पाँव और घुटने मजबूत होते हैं।

शारीरिक पेशियों एवं नाडियों को बलशाली बनाने के लिये यह आसन करना आवश्यक है।

इस आसन को करने से घुटने और पिण्डलियाँ सबल होती हैं।

दमा, राजयक्ष्मा आदि रोगों से पीड़ित रोगियों के लिये यह आसन गुणकारी माना जाता है।

यह आसन अम्लपित्त का नाश करता है।

यह आसन बवासीर को रोकता है।

यह आसन कब्ज को दूर करता है।

इस आसन से क्षुधा बढ़ती है।

यह आसन विषमाग्नि को समाग्नि बनाता है।

सावधानियाँ :-

जिन रोगियों के घुटने, टखने तथा पैरों की अंगुलियाँ बुरे रूप में प्रभावित हैं, उनके लिये गोमुखासन की स्थिति में आना कठिन हो सकता है।

ऐसे व्यक्तियों को सलाह है कि वे भूपृष्ठ पर केवल घुटने मोड़ कर बैठ जायें तथा रीढ़ की हड्डी को ऊपर की ओर सीधी रखें। शरीर पर किसी प्रकार का बलप्रयोग न करें।

इस आसन को करते समय मेरुदण्ड को बिलकुल सीधा रखें।

प्रारम्भिक अवस्था में यह आसन अत्यन्त मन्दगति से करें।

इस आसन का अभ्यास कर लेने के उपरान्त विश्राम प्राप्त करने के लिये शवासन करना ही चाहिये।

गृद्धासन



गीध नामक पक्षी को गृद्ध कहते हैं। जिस आसन को करते हुये शरीर की आकृति गृद्धपक्षी के समान होता है, उस आसन को गृद्धासन कहते हैं।

विधि :-

सर्वप्रथम समतल भूमि पर ठीक से खड़े हो जाइये। तदुपरान्त बाये पैर को पृथ्वी पर जमा कर दाये पैर को बाये पैर में लता की भाँति लपेट दीजिये। इसी प्रकार दोनों भुजाओं को परस्पर में लपेट दीजिये। अंगुलियों को गिद्ध की चोंच-सी बना कर हाथों को मुख के सामने स्थिर कर लीजिये।

यथासम्भव काल तक इस आसन से स्थिर रहने के उपरान्त पुनः पूर्वस्थिति को प्राप्त कीजिये।

उक्त प्रक्रिया को पैर बदल कर कीजिये। इस प्रकार यह आसन दो चरणों में पूर्ण होता है।

समय :-

इस आसन को आरम्भिक अवस्था में आठ से दस सेकन्द तक कीजिये। अभ्यास हो जाने पर इसे दो मीनट तक किया जा सकता है।

लाभ :-

यह आसन पिण्डलियों की मांसपेशियों को सबल बनाता है।

इस आसन का नियमित अभ्यास हाथ पैरों को विकसित और पुष्ट करता है।

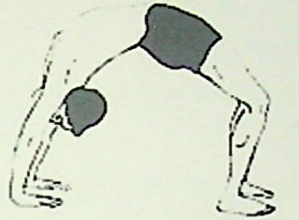
यह आसन रीढ़ की हड्डी को सुदृढ़ करता है।

पैर एवं हाथों की हड्डियों को पुष्ट करने में यह आसन सहायता करता है।

इस आसन के प्रयोग से गठिया तथा गृध्रसीवात (सायटिका) दूर होता है।

सावधानियाँ :-

आरम्भिक अवस्था में इस आसन को करते समय किसी विशेषज्ञ का सहयोग लेना चाहिये।



चक्रासन

इस आसन को करते समय शरीर की आकृति चक्र के समान बन जाती है। इसीलिये इस आसन का नाम चक्रासन पड़ा है।

विधि :-

सबसे पहले पीठ के बल लेट जाइये। धीरे-धीरे दोनों घुटनों को मोड़िये। एडियाँ नितम्बों से छुती हुयी होनी चाहिये। दोनों पैरो में लगभग एक फिट का अन्तर रखिये। हथेलियों को भूमि पर कनपटियों के बगल से घुमा कर इस प्रकार रखिये कि अंगुलियों के अगले हिस्से कन्धे की ओर रहें।

तदुपरान्त धीरे-धीरे धड़ को ऊपर उठाइये। मस्तक भी धीरे-धीरे सरकता जायेगा। इस प्रकार करते हुये ऐसी स्थिति में आ जाइये कि शरीर के ऊपरी भाग का भार मस्तक के ऊपरी भाग पर पड़े। उसके बाद हाथों को और पैरों को सीधा करते हुये मस्तक और शरीर को पूरी गोलाई में ऊपर उठाइये। शरीर को ऊपर की ओर खींच कर घुटनों को भी सीधा किया जा सकता है।

सात से आठ सेकन्द इसी आसन में स्थिर रहिये। पुनः विलोम क्रम से सहज अवस्था में आ जाइये।

समय :-

सहजरूप से जितनी देर तक इस आसन में रह सकते हैं, उतने समय तक ही इस आसन को करना चाहिये। आरम्भिक दिनों में यह आसन केवल पाँच सेकन्द से दस सेकन्दपर्यन्त करना चाहिये।

लाभ :-

यह आसन शरीर की सभी नाड़ियों एवं ग्रन्थियों के लिये लाभदायक है।

यह आसन रसस्रावों को उचित ढंग से प्रभावित करता है।

इस आसन के कारण स्त्रियों के प्रजननविषयक रोगों का नाश होता है।

इस आसन के द्वारा मेरुदण्ड पर तनाव पड़ने के कारण शरीर बूढ़ापे तक लचीला और फूर्तिला बना रहता है।

यह आसन आँख की दृष्टि का विकास करता है।

इस आसन के अभ्यासु का स्वर मधुर होता है।

कब्ज, उदरवायु, दमा, अपचन में यह आसन लाभदायक होता है।

इस आसन से त्वचा का रंग खिलता है।

इस आसन के प्रयोग से मस्तिष्क में रक्तप्रवाह अधिक होता है, जिससे उसके कार्यों में प्रगति होती है। स्मरणशक्ति की वृद्धि तीव्र होती है।

यह आसन शारीरिक सम्पूर्ण अवयवों को सशक्त बनाता है।

इस आसन को करने वाले साधक के जोड़ों में पीड़ा नहीं होती।

पाचनशक्ति की अभिवृद्धि के लिये यह आसन अत्युपयोगी है।

स्वप्नदोष से पीड़ित साधकों को यह आसन नियमितरूप से करना चाहिये।

चेहरे की झुर्रियाँ तथा शरीर की सिकुड़न को नहीं होने देना हो तो इस आसन को किया जाना चाहिये।

इस आसन से पैर के पंजे, टखने, पिण्डली, घुटने, जंघायें, पेट, पीठ, कन्धे, हाथ, गर्दन आदि समस्त जोड़ों, बन्धनों और मांसपेशियों का व्यायाम होता है।

यह आसन मेरुदण्ड को लचीला, स्वस्थ और सशक्त बनाता है।

पाचनशक्ति को सुदृढ़ करना, कब्ज को दूर करना आदि पाचनविषयक रोगों का विनाश करने के लिये यह आसन करना चाहिये।

इस आसन में स्त्रीशरीर के दोषों को दूर करने की क्षमता है।

सावधानियाँ :-

चक्रासन का अभ्यास श्वास को अन्दर रोक कर ही करना चाहिये।

उच्च रक्तचाप, हृदयरोग, पेट के आन्तरिक घाव, अस्वस्थ आँत, अस्थिदोष, नेत्ररोग अथवा ऊँचा सुनने के रोग से ग्रसित मनुष्य को यह आसन नहीं करना भूल कर भी नहीं करना चाहिये।

यदि पहले किसी भी प्रकार का पीछे झुकने वाले अन्य साधारण आसनों का अभ्यास न किया हो तो यह आसन करने की जल्दी नहीं करे।

आसन करते समय शरीर पर अधिक जोर नहीं देना चाहिये तथा शरीर के साथ किसी प्रकार की जोर-जबरदस्ती भी नहीं करनी चाहिये।

स्त्रियों को गर्भावस्था में यह आसन नहीं करना चाहिये।

इस आसन के उपरान्त विश्राम के हेतु से अवश्य शवासन करना चाहिये।



ताड़ासन

इस आसन के समय में शारीरिक आकृति ताड़, खजूर अथवा नारियल के वृक्ष के समान हो जाती है। इसी कारण से इस आसन को ताड़ासन कहते हैं।

विधि :-

सबसे पहले सावधान मुद्रा में खड़े हो जाना चाहिये। दोनों पैरों में चार से छह इंच का अन्तर होना चाहिये। अपनी भुजाओं को धीरे-धीरे सिर के ऊपर उठाइये। हथेलियाँ ऊपर की ओर ही रहनी चाहिये। अपनी दृष्टि को हाथों के अग्रभाग पर केन्द्रित कीजिये। नाक से श्वास लेकर उदर में वायु भरना चाहिये। वायु को अन्दर ही अन्दर रोक कर दोनों एड़ियों को उठा कर पंजो के बल पर खड़े रहना चाहिये। शरीर को ऊपर की ओर इस प्रकार उठाइये कि जैसे वह छत को छूने जा रहा हो। उस समय दृष्टि सामने किसी भी एक वस्तु पर स्थिर कर लेनी चाहिये। ऐसा अनुभव कीजिये कि आसनार्थी को कोई ऊपर की ओर खींच रहा है। इस आसन में आप अधिक से अधिक समय व्यतीत रिना चाहिये। तदुपरान्त आप धीरे-धीरे विलोमक्रम से सावधान मुद्रा में आना चाहिये।

समय :-

प्रारम्भिक अवस्था में एक से दो मिनट तक इस आसन को करना चाहिये। उन दिनों में इस आसन को चार अथवा पाँच बार किया जा सकता है। शनैः शनैः समय और आवृत्तियों को बढ़ाया जा सकता है।

लाभ :-

इस आसन का नियमित प्रयोग करने से स्मरणशक्ति का आश्चर्यकारी विकास होता है।

यह आसन आलस्य को दूर करता है।

यह आसन शरीर की मांस नामक धातु का विकासक है।

जंघाबल बढ़ाने के इच्छुक मनुष्य को यह आसन अवश्य करना चाहिये।

यह आसन एकाग्रता का संवर्द्धक है।

इस आसन से मलाशय और आमाशय की मांसपेशियाँ विकसित होती हैं।

इस आसन को करने से शरीर में नियमितरूप से स्फूर्ति का संचार होता है।

यह प्रयोग थकावट को तत्काल दूर कर देता है।

इस आसन को करने से खड़े होकर कार्य करने में किसी प्रकार की कोई समस्या नहीं आती।

यह आसन पेट की बीमारियों से हमेशा-हमेशा के लिये मुक्ति दिलाता है।

इस आसन को करने से एड़ियाँ मजबूत होती हैं।

इस आसन को करने से आँतें फैलती हैं।

इस आसन के द्वारा छाती, पैर, भुजा और कमर में खिंचाव आने के कारण से शारीरिक शक्ति की अतीव वृद्धि होती है।

शरीर की अवगाहना बढ़ाने के इच्छुक साधकों को इस आसन का प्रयोग नियमितरूप से करना चाहिये।

इस आसन के अनुप्रयोग से फैंफड़ों में मजबूती आती है।

यह आसन पेट के भारीपन को दूर करता है।

कब्ज दूर करके पेट को साफ करने में यह आसन सहयोगी बनता है।

यह आसन मेरुदण्ड के सम्यक् विकास में सहायता करता है तथा जिन बिन्दुओं से स्नायु निकलते हैं, उनके अवरोधों को दूर करता है।

सावधानियाँ :-

इस आसन को करते समय श्वास की गति सामान्य होनी चाहिये।

आसन के काल में शरीर को यथाशक्ति तान कर रखना चाहिये।

इस आसन को करते समय पेट को खाली रखना चाहिये।

इस आसन को करते समय शरीर पर अनावश्यक जोर नहीं लगाना चाहिये। जितना हो सके, उतना तनाव की स्थिति से बचना श्रेयस्कर है।

आसनसाधना के आरम्भिककाल में शरीर की मांसपेशियाँ कड़क होने के कारण पाँच-सात दिनों तक शरीर तनाव को सहन करने में असक्षम होता है। अतः शरीर जितना सहन कर सके, उतनी ही देर तक आसन करना चाहिये। जबरदस्ती करके शरीर को दुःख नहीं पहुँचाना चाहिये।



त्रिकोणासन

जिस आसन को करते समय सम्पूर्ण शरीर का आकार गणीतीय त्रिकोण के समान हो जाती है, उसे त्रिकोणासन कहते हैं। मुख्यरूप से इस आसन को चार विभागों में विभाजित किया जा सकता है। हमने दो ही अवस्थाओं के संग्रह को त्रिकोणासन माना है।

विधि :-

सावधान की सीधी स्थिति में खड़े हो जाइये। दोनों पैरों को इतना फैलाये कि उनमें दो से तीन फीट का दूरी रहना चाहिये। दृष्टि सामने स्थिर रखना चाहिये। हाथों को बगल में ढ़ीला करके लटकने दीजिये। पैरों को सीधा और कड़ा रखिये। किसी भी एक पैरों को बगल की ओर मोड़ लीजिये। पैर को इतना मोड़िये कि वह समकोन की स्थिति में हो जायें। उसके बाद जो पैर मोड़ा हो, उसी ओर के हाथ को नीचे की ओर ले जाकर अपने उसी पैर के अंगुठे को पकड़ ने का प्रयत्न कीजिये। दूसरा हाथ कन्धे की ही सीध में ऊपर उठाते जाइये। नीचे झुकते समय श्वास लीजिये एवं ऊपर उठते समय श्वास छोड़िये।

इस आसन को करते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि पैर सीधे ही रहने चाहिये।

कुछ देर तक इस आसन में स्थिर रह कर मूल अवस्था में आइये। तदुपरान्त दूसरे पैर से पुनः आसन करना चाहिये।

समय :-

प्रारम्भिक अवस्था में यह आसन सात से आठ सेकन्द तक करना चाहिये। शनैः शनैः समय की वृद्धि की जानी चाहिये।

अभ्यास अवस्था में इस आसन को दो मीनट तक किया जा सकता है।

एक दिन में इस आसन के चार अथवा पाँच आवर्तन करने चाहिये।

लाभ :-

इस आसन को करने से पैर, जंघायें और नितम्बों की मांसपेशियों को बल मिलता है।

पैरों का सन्तुलन साधने के लिये इसका अभ्यास आवश्यक है।

इस आसन के द्वारा कमर और गरदन की पीड़ा को सदा-सर्वदा के लिये दूर किया जा सकता है।

इस आसन को करने से सीना बढ़ता है।

कब्ज दूर होकर शौच स्वच्छ होने में इस आसन से सहयोग मिलता है।

बढ़ती उम्र की बालिकाओं के लिये यह आसन लाभदायक है।

मेरुदण्ड, कुल्हे के जोड़, हाथों तथा हथेलियों पर इस आसन का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है।

यह आसन नेत्रों की क्षमता को बढ़ाता है।

इस आसन से रीढ़ की हड्डी लचीली बनती है।

यह आसन मानसिक तत्परता की शक्ति देता है।

इस आसन के द्वारा पाचनक्रिया सुधरती है।

यह आसन क्षुधा की वृद्धि करता है।

इस आसन के माध्यम से मोटापे को दूर किया जा सकता है।

वायुनिःसरण की समीचीनता के लिये यह आसन करना चाहिये।

यह आसन मन को सबल बनाता है।

इस आसन से शरीर सुडौल बनता है।

इस आसन के द्वारा शरीर की स्फूर्ति भी विकसित होती है।

अपने बालकों की ऊँचाई को बढ़ाने के लिये उनके द्वारा यह आसन करवाया जाना चाहिये।

सावधानियाँ :-

इस आसन को करते समय शरीर में शिथिलता नहीं आनी चाहिये।

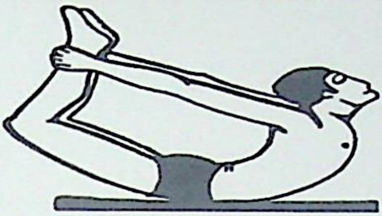
इस आसन को धीरे-धीरे करना चाहिये।

भोजन के उपरान्त यह आसन नहीं करना चाहिये।

गर्भवती महिला इस आसन को नहीं करें।

बाकी पूर्व आसन के समान सावधानिया रखे।

इस आसन को करने के उपरान्त विश्राम अवस्था में खड़े रहना चाहिये।



धनुरासन

धनु का अर्थ धनुष है। इस आसन को आसन करते समय शरीर का आकार धनुष्य के समान बनता है। इसीलिये इस आसन को धनुरासन कहते हैं।

विधि :-

भुजंगासन के समान ही पेट के बल जमीन पर लेट जाइये। पैरों को घुटनों से मोड़िये। अपने हाथों से दोनों पैरों के टखनों को पकड़िये। हाथों को सीधे रखते हुये पैरों के स्नायुओं को इस प्रकार खींचिये, जैसे आप उन्हें नितम्बों से अलग ऊपर की ओर ले जा रहे हैं। उसी समय जांघों के साथ सिर और सीने को भी जमीन से जितना ऊपर उठा सकते हैं, उठाने का प्रयत्न कीजिये। कुछ देर उसी स्थिति में स्थिर रहने के उपरान्त विलोम क्रम से धीरे-धीरे आसन का समापन करना चाहिये।

समय :-

आरम्भिक अवस्था में इस आसन को छह से सात सेकन्दों तक करना चाहिये। इस आसन को दिन में पाँच बार भी कर सकते हैं।

लाभ :-

यह आसन कोष्ठबद्धता, अजीर्ण, जिगर की कमजोरी इत्यादि रोगों को अतिशीघ्र दूर करता है।

इस आसन को करने से मेरुदण्ड लचीला और सशक्त होता है।

इस आसन के अभ्यास से उदरवर्ती अवयव ठीक होते हैं।

यह आसन पेट की चर्बी को घटाता है।

यदि निरन्तर यह आसन किया जाता है तो सायटिका दूर होता है।

बवासीर और मन्दाग्नि के निवारण में भी यह आसन सहयोगी है।

रीढ़ की हड्डी से निकलने वाले स्नायु को बलशाली बनाने के लिये प्रतिदिन यह आसन करना चाहिये।

इस आसन करने से भुजाओं और कन्धों की पेशियाँ लचीली बनती हैं।

छाती के विकार और दिल की कमजोरी को दूर करने के लिये इस आसन का नियमित प्रयोग करना चाहिये।

यह आसन पेट की गैस को नष्ट करता है।

मन्दाग्नि के कारण जिन्हें भूख नहीं लगती, उन्हें यह आसन प्रतिदिन अवश्य करना चाहिये।

इस आसन के द्वारा कण्ठविषयक समस्त व्याधियाँ नष्ट हो जाती हैं।

गर्भाशयविषयक अशुद्धियों को दूर करना हो तो यह आसन करना चाहिये।

यह आसन मासिकधर्मविषयक पीड़ा को दूर करता है।

इस आसन को करने से स्वर में मधुरता आती है।

इस आसन को नेत्रज्योतिवर्द्धक माना गया है।

आँत, आमाशय तथा अन्य पचनांगों को यह आसन सुदृढ़ करता है।

गठिया, वात तथा जोड़ों की व्याधियों और अशुद्धियों को दूर करने के लिये यह आसन नियमितरूप से करना चाहिये।

अस्थियों के बन्धनों को लचीले और स्वस्थ बनाने के लिये तथा चरबी को कम करने के लिये इस आसन का अभ्यास किया जाना चाहिये।

ऑर्थराइटिस के रोगियों को इस आसन का लाभ उठाना चाहिये।

गैस, खट्टी डकारें, पाचनरोग आदि दुष्ट रोगों का विनाश करने के लिये यह आसन करना आवश्यक है।

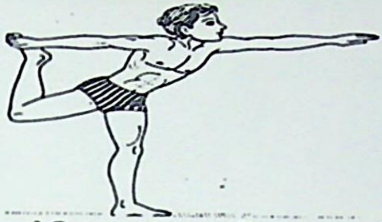
सावधानियाँ :-

हर्निया और मेरुदण्ड की चक्कियों के विचलन (स्लिपडिस्क) के रोगियों को यह आसन नहीं करना चाहिये। पैरों को उठाते समय सावधानी रखनी चाहिये। किसी भी प्रकार की शीघ्रता उचित नहीं है। आरम्भिक अवस्था में सहजतया जितनी देर आसन में रह सकते हैं, उतनी ही देर तक यह आसन करना चाहिये। शरीर को जबरन मोड़ना, ठीक नहीं है।

यह आसन महिलाओं को अवश्य करना चाहिये।

धनुरासन में शलभासन, भुजंगासन और नौकासन का सम्मिश्रण होने से उन आसनों का लाभ भी धनुरासन करने से प्राप्त होता है।

इस आसन के बाद शवासन करना अधिक श्रेयस्कर है।



नटराजासन

वैदिक सम्प्रदाय में मान्यता है कि शंकर जी ने प्रसन्नता से ताण्डवनृत्य किया था। उसी कारण शंकर जी का नटराज यह नामकरण हुआ। नृत्य के समय शंकर जी का जो आकृतिबन्ध दिखायी पड़ा, वही आकृतिबन्ध इस आसन को करने वाले साधक का दिखायी देता है। यही कारण है कि इस आसन को नटराजासन कहा जाता है।

विधि :-

भूमि पर सीधे खड़े हो जाइये। हाथों को अगल-बगल में रहने दीजिये। शरीर को एकदम सीधा रखिये। दृष्टि भी सीधी होनी चाहिये। दाहिने पैर को पीछे की ओर मोड़ कर अधिक से अधिक ऊपर ले जाने का प्रयत्न कीजिये। पश्चात् दाये हाथ से मोड़े गये पैर के टखने को पकड़ कर अंगुठे को पकड़ लीजिये। पीछे मुड़े हुये दाये हाथ की कोहनी ऊपर की ओर मुड़ी हुयी होनी चाहिये।

बाँये हाथ को सामने करते हुये धड़ को सामने कुछ ऊपर उठाइये। हाथ से चिन्मुद्रा कीजिये और उसी पर अपनी दृष्टि को केन्द्रित कीजिये। कुछ समय इसी अवस्था में खड़े रहिये। विलोमक्रम से शनैः शनैः पूर्ववर्ती अवस्था में आ जाइये।

कुछ समय विश्रान्ति लेकर दूसरे पैर से भी यह आसन करना चाहिये।

इस आसन को करते समय सहज अवस्था होनी चाहिये। शरीर के साथ किसी भी प्रकार की ज्यादती नहीं करनी चाहिये।

समय :-

पहले सप्ताह में प्रतिदिन चार बार इस आसन को कीजिये। आगे यथाशक्य आवृत्तियाँ बढ़ायी जा सकती हैं।

आरम्भिक दिनों में दस सेकन्द तक इस आसन को किया जा सकता है। अभ्यासदशा में इस समय को दो मीनट तक बढ़ाया जा सकता है।

लाभ :-

यह आसन तन्त्रिका-तन्त्र में सन्तुलन स्थापित करता है।

इस आसन से जंघाबल बढ़ता है।

शारीरिक नियन्त्रण और मानसिक एकाग्रता को प्राप्त करने में यह आसन सहायता प्रदान करता है।

इस आसन की एक ही क्रिया के द्वारा शरीर के छोटे-बड़े सभी जोड़ सक्रिय हो जाते हैं।

कन्धों के जोड़ों को, कूल्हे के जोड़ों को, घुटनों, टखनों, हथेलियों तथा अंगुलियों के जोड़ों को उचित रूप से सक्रिय करने का कार्य इस आसन के द्वारा सम्पन्न होता है।

इस आसन को करने से कमर लचीली बनती है।

यह आसन रीढ़ के कड़ेपन और दर्द को दूर करता है।

इस आसन के द्वारा पाचनशक्ति की वृद्धि होती है।

इस आसन को करने से नेत्रज्योति बढ़ती है।

भावनाभिव्यक्ति को सन्तुलित रखने का कार्य यह आसन करता है।

हाथ और पैरों की कार्यक्षमता का विकास करने के लिये इस आसन का अभ्यास किया जाना चाहिये।

इस आसन को करने से मोटापा दूर होता है।

यह आसन संकल्पशक्ति में आशातीत वृद्धि करता है।

जीवनीशक्ति का विकास करने के लिये इस आसन को करना चाहिये।

यह आसन पौरुषबल का विकास करता है।

निर्णय लेने की क्षमता का विकास करना हो तो इस आसन का नियमित अभ्यास करना चाहिये।

सावधानियाँ :-

शरीर को कष्ट पहुँचा कर इस आसन को नहीं करना चाहिये।

सामान्य आसनों में सफलता की प्राप्ति होने के उपरान्त ही इस आसन का अभ्यास किया जाना चाहिये।

शारीरिक थकावट को दूर करने के लिये इस आसन के उपरान्त विश्राम की स्थिति में खड़े रहना चाहिये।



पद्ममयूरासन

विधि :-

सबसे पहले पद्मासन से बैठ जाइये। तद्उपरान्त शरीर को घुटनों के बल उठाइये। हथेलियों को घुटनो के सामने स्थापित कीजिये। अंगुलियाँ घुटनो की ओर मुड़ी हुई होनी चाहिये। कुहनियों को झुकाते हुयेउन्हे पेट के दोनों ओर ले आइये। सामने की ओर झुककर सीने को भुजाओं पर स्थित कीजिये।

अब धीरे-धीरे पैरों को उपर उठाइये। पूरा शरीर हथेलियों के सहारे जमीन से समानान्तर आना चाहिये। इस आसन की तीन से पाँच बार आवृत्ति की जा सकती है।

समय :-

आरम्भिक अवस्था में यह आसन दस सेकन्दों तक करना चाहिये। अभ्यास हो जाने पर इस आसन को दो मीनट तक किया जा सकता है।

लाभ :-

यह आसन मधुमेह का निवारक है।

इस आसन से पचनक्रिया सुव्यवस्थित होती है।

यह आसन प्लीहा के उपचार में सहयोगी है।

अन्ननलिका में संचित विषैले द्रव्य को दूर करने में यह आसन सहयोगी बनता है।

यह आसन रक्तशुद्धिकरण की क्रिया को सम्पन्न करता है।

इस आसन से स्वादुपिण्डस्थ इंसुलिन का प्रमाए बढ़ता है।

इस आसन को करने वाले को पद्मासन तथा मयूरासन करने से होने वाले लाभ अनायास ही प्राप्त हो जाते हैं।

सावधानियाँ :-

यह आसन किसी के मार्गदर्शन में ही करें।

अन्य आसनों के द्वारा शरीर सध जाने पर ही इस आसन को करें।



पद्मासन

विधि :-

सबसे पहले आसनार्थी को पृथ्वीतल पर दोनों पैरों को फैला कर बैठ जाना चाहिये। उसके बाद दाये पैर को मोड़ कर उसको बायी जांघ पर इस प्रकार रखना चाहिये, जिससे एड़ी कुल्हे की हड्डी का स्पर्श कर सके। तलवा ऊपर की ओर ही रहना चाहिये। तदुपरान्त बाया पैर मोड़ कर उसे दाहिनी जांघ पर रखना चाहिये। हाथों को दोनों घुटनों पर रखना है। दृष्टि नासाग्र होनी चाहिये। कमर, छाती, सिर तथा रीड की हड्डी बिलकुल स्थिर और सीधी रखनी चाहिये। आसन करते समय प्राणायाम की विधि का पूरा ध्यान रखना चाहिये।

इस आसन को करने से पैरों का आकार कमल जैसा होने के कारण इसको **कमलासन** भी कहते हैं।

समय :-

आरम्भिक दिनों में यह आसन एक मिनिट तक करना चाहिये। इसे क्रमशः बढ़ाते हुये घण्टों तक किया जा सकता है।

लाभ :-

इस आसन में प्रविणता को प्राप्त कर लेने पर व्यक्ति अपने शरीर को अधिक काल तक स्थिर रख सकता है। इससे ध्यान की सिद्धि का फल प्राप्त होता है।

पद्मासन शारीरिक, स्नायविक एवं भावनात्मक समस्याओं से छुटकारा दिलाने में सहायक बनता है।

इस आसन से वात, पित्त और कफ, इन तीन दोषों का नाश होता है।

स्वप्नदोष और प्रमेह जैसी व्याधियों का नाश करने में यह आसन सहयोगी बनता है।

इस आसन का अभ्यास स्मरणशक्ति को बढ़ाता है।

पेट के रोगों से छुटकारा पाना हो तो इस आसन को अवश्य करना चाहिये।

यह आसन वीर्यरक्षक होने के कारण बलवर्द्धक और आयुवर्द्धक है।

इस आसन को करने से धीरे-धीरे पैरों में लचीलापन आता है, जिससे अन्य आसनों को करने में किसी प्रकार की कठिनायी नहीं होती।

इस आसन को करने से स्त्रियों के गर्भाशयसम्बन्धित रोग दूर होते हैं।

इस आसन को करने पर जठराग्नि तीव्र होने से भूख बढ़ती है।

विशुद्ध नाड़ीतन्त्र से सम्पन्न पुरुष के द्वारा यदि यह आसन किया जाता है तो उसके शरीर पर रोगों की छाया भी नहीं पड़ सकती।

अनिद्रा के रोगियों को इसका अभ्यास करना ही चाहिये।

कुष्ठ, रक्तपित्त, पक्षाघात, क्षय, मलावरोध, दमा, हिस्टीरिया, धातुक्षय, कैंसर, त्वचा के रोग, उदरकृमि, नपुंसकत्व और वन्ध्यत्व जैसे रोगों का विनाश करने के लिये नियमितरूप से यह आसन किया जाना चाहिये।

मुख की तेजस्विता और स्वभाव में प्रसन्नता को बढ़ाने के लिये नियमितरूप से इस आसन को किया जाना चाहिये।

इस प्रकार यह आसन स्त्री-पुरुषों के लिये समानरूप से लाभदायक है।

मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य के लिये यह आसन लाभदायक है।

इस आसन के कारण पैरों की रक्तवाहिनी नलिकायें सम्यक् रूप से कार्य करने लगती हैं। फलस्वरूप पैरों में सबलता आती है।

सावधानियाँ :-

इस आसन को करते समय पैरों को अधिक तनाव नहीं देना चाहिये।

प्रारम्भिक अवस्था में यह आसन अधिक देर तक नहीं करना चाहिये।

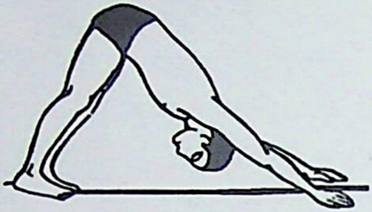
साइटिका अथवा रीढ़ के नीचले भाग के आसपास किसी प्रकार की व्याधि से पीड़ित व्यक्तियों को यह आसन नहीं करना चाहिये।

इस आसन के बाद सुखासन करना लाभदायक है।

इस आसन को करते समय गरदन सीधी रखनी चाहिये।

इस आसन को करते समय जिनके पैर भूमिस्पर्श नहीं करते हो, उन्हें दोनों हाथों से शनैः शनैः दबाव देकर पैरों के भूमिस्पर्श कराने का प्रयत्न करना चाहिये।

आरम्भिक दिनों में दोनों पैर सहजरूप से एक दूसरों पर चढ़ते नहीं हैं। इसमें उत्साहहीन नहीं होना चाहिये। उत्साहपूर्वक अनवरत प्रयत्न करने से यह कार्य भी सहज हो जायेगा।



पर्वतासन

इस आसन को करते समय शरीर की आकृति पर्वत के समान होती है। अतः इस आसन को पर्वतासन कहना समुचित है।

विधि :-

पेट के बल पर लेट जाइये। हाथों को भूपृष्ठ पर जमाइये। तदुपरान्त पैरों को न हिलाते हुये और कमर को स्थिर रखते हुये शरीर को पीछे की ओर खींचिये। सिर को नीचे करके हनु को छाती से लगाइये। पैर के पंजे भूतल पर ही रहने चाहिये और नीतम्ब को यथाशक्य ऊपर की ओर खींच लेना चाहिये साथ में पेट को अन्दर की खींचना चाहिये।

समय :-

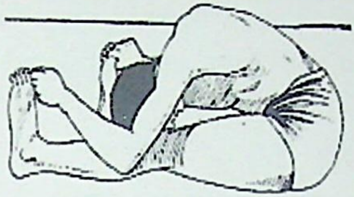
इस आसन को दस से पन्द्रह सेकन्द तक करना चाहिये। क्रमशः बढ़ाते हुये दो मीनट तक की अवधि बनायी जा सकती है।

लाभ :-

नाड़ीसंस्थान में सन्तुलन की प्राप्ति के लिये यह आसन उपादेय है।
इस आसन से शरीर बलशाली बनता है।
यह आसन छाती के विकास में सहयोगी बनता है।
इस आसन को करने से रक्तशुद्धि होती है।
फैंफड़ों के विकार दूर करने के लिये इस आसन को किया जाता है।
श्वास व दमा के रोगियों को यह आसन अवश्य करना चाहिये।
इस आसन से घुटने की पीड़ा दूर होती है।
उदरव्याधियों के लिये यह रामबाण औषध है।
इस आसन को करने से बद्धकोठता दूर होती है।

सावधानियाँ :-

इस आसन को करते समय कुम्भक प्राणायाम करना चाहिये।
इस आसन को करने के उपरान्त मकरमुखासन करना चाहिये।



पश्चिमोत्तानासन

इस आसन को उग्रासन भी कहा जाता है। अनेक रोगों का संहारक होने से इसका उग्रासन यह नाम सार्थक ही है। अथवा, इसे करने में उग्र परिश्रम करना होता है। इसीलिये इसका नाम अन्वर्थक है।

विधि :-

सर्वप्रथम सामान्य अवस्था में बैठ जाइये। दोनों पैरों को एक दूसरे से सटा कर सामने की ओर पूरे विस्तार में फैला दीजिये। हाथों को जंघाओं पर रखिये। धीरे-धीरे धड़ को आगे की ओर झुका कर दोनों हाथों से अंगुठे को पकड़ने का प्रयत्न कीजिये। यदि सम्भव न हो तो टखनों को पकड़ना चाहिये।

मस्तक के द्वारा घुटनों को स्पर्श करने का प्रयत्न कीजिये। आगे झुकते समय रेचक करना चाहिये। झुकने के उपरान्त आठ से दस सेकन्द तक श्वासों को रोक कर रखना चाहिये। ऊपर उठते समय पुनः श्वास लीजिये।

जिन साधकों में कमरविषयक विकार हैं अथवा जो मोटापे से पीड़ित हैं, उन साधकों को इस आसन का अभ्यास करने में प्रथमतः कष्ट होगा। किन्तु, सहनशीलतापूर्वक इसका नियमित अभ्यास करने से उनके वे रोग सदा-सदा के लिये विनष्ट हो जायेंगे।

समय :-

आरम्भिक दिनों में यह आसन केवल पाँच मीनट पर्यन्त ही करना चाहिये। लगभग महिनेभर तक ठीक से अभ्यास करने के उपरान्त समय बढ़ाना चाहिये। इस आसन की अधिकतम अवधि दो मीनट की है।

लाभ :-

इस आसन को करने से कमर एवं नितम्बों की मांसपेशियों में स्वस्थता आती है।

यह आसन पेट की अनावश्यक चरबी को दूर करता है।

यह आसन मोटापा, बद्धकोष्ठता आदि रोगों का उपशमन करता है।

रीढ़ की नसों व मांसपेशियों में नये और ताजे रक्त का संचार करने का कार्य इस आसन के द्वारा सम्पन्न होता है।

इसके अभ्यास से पीठ की सभी प्रकार की पीड़ा दूर होती है।

यह आसन मस्तिष्क की नाड़ियों पर आश्चर्यजनक प्रभाव डालता है और मस्तिष्क के समस्त तनावों को दूर करके मानसिक सन्तुलन को बनाने में विशेष उपयोगी होता है।

शरीर का सबल और दीर्घजीवी बनाने के लिये इस आसन का अनुप्रयोग लाभदायक माना गया है।

इस आसन का अभ्यास करने से उदरवर्ती अवयव सुदृढ़ होते हैं।

इसके नियमित प्रयोग से पाचनसंस्थान सक्रिय होता है।

जिगर किड़नी और क्लोम की कार्यशीलता को बढ़ाने के लिये इस आसन को अत्युपयोगी माना गया है।

यह आसन सन्धियों को लचीली बनाता है।

इस आसन से मोटापा दूर होता है।

इस आसन का अभ्यास जठराग्नि को प्रदीप्त करने में अत्यधिक योगदान प्रदान करता है।

यह आसन पैरों के स्नायुओं को कार्यशील एवं सुदृढ़ बनाता है।

मधुमेह, अजीर्ण आदि रोगों में भी यह आसन लाभदायक है।

स्त्रियों के जननेन्द्रियविषयक समस्त रोगों को दूर करने में यह आसन प्रभावीरूप से सक्षम माना गया है।

सावधानियाँ :-

अभ्यास के आरम्भकाल में शरीर को दिये बिना ही इस आसन को सम्पन्न करना चाहिये। सहजतया जितना और जहाँ तक झुका जा सके, उतना और वहाँ तक ही झुकने का प्रयत्न करना चाहिये।

साइटिका, जीर्ण जोड़ों और पीठ की पीड़ा से ग्रसित रोगियों को यह आसन नहीं करना चाहिये।

इस आसन से उत्पन्न हुयी क्लान्ति को दूर करने के लिये सुखासन करना लाभप्रद है।



ब्रह्मचर्यासन

ब्रह्मचर्य जैसे महानतम व्रत की निर्दोष परिपालना करने में सहयोगी होने के कारण ही इस आसन को ब्रह्मचर्यासन कहते हैं।

विधि :- सर्वप्रथम जमीन पर पैर फैला कर बैठ जाइये। घुटने, एड़ी, पिण्डली और जंघायें परस्पर मिला लीजिये। दोनों हाथों को कुल्हे के पास ठीक से जमा लीजिये। सिर, गर्दन और मेरुदण्ड इन सभी को सीधा रखना चाहिये। धीरे-धीरे श्वास को अन्दर खींचिये। श्वास भरते हुये हाथों के हथेलियों के बल पर नितम्ब के साथ पाददण्डों को ऊपर उठा लीजिये। जितनी देर तक इस आसन में स्थिर रह सकते हैं, रहने का प्रयत्न करना चाहिये। श्वास को रोके रखने का प्रयत्न भी करना चाहिये।

इस आसन की पुनः पुनः आवृत्ति करनी चाहिये।

समय :-

आरम्भिक दिनों में इस आसन का अभ्यास पाँच से दस मिनट तक करना चाहिये। धीरे-धीरे इस आसन के समय को बढ़ाते रहना चाहिये। इस आसन का अभ्यास जितना निर्दोष एवं अधिक काल तक होता रहेगा, कामवासना का विलय भी उसी गति में होता रहेगा।

लाभ :-

इस आसन का अभ्यास करने वाले साधक का ब्रह्मचर्य अखण्ड बनता है।

यह आसन कामशक्ति और उत्तेजना से युक्त भावनाओं को साधना में बदल देता है।

यह आसन स्मरणशक्ति का विकासक है।

इस आसन से रीढ़ की हड्डी सबल होती है।

यह आसन पाचनशक्ति को ठीक रखता है।

इस आसन से सहनशक्ति का विकास होता है।

मेरुदण्ड के स्नायु और उदरगुहा को ठीक रखने की इच्छा हो तो इस आसन का अभ्यास करना चाहिये।

पृष्ठवंश की माँसपेशियों के लिये यह आसन लाभकारी है।

शरीर की ऊर्जा का रक्षण करने के लिये और मानसिक शक्ति का विकास करने के लिये यह आसन लाभदायक है।

यह आसन आत्मशक्ति को बढ़ाता है।

विशेष :-

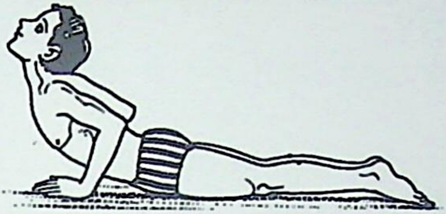
इस आसन का अभ्यास करने वाले साधकों को शतावर्यादि चूर्ण का सेवन करना चाहिये। इस चूर्ण में शतावरी, बड़ी ईलायची, सफेद मुसली, अश्वगन्धा, गोक्षुर, मुलेठी और क्रौंच के बीजों का प्रयोग हता है। इन समस्त द्रव्यों को समान मात्रा में लेकर कपड़छन चूर्ण बना लेना चाहिये। प्रतिदिन भोजन के उपरान्त आधे चम्मच चूर्ण का सेवन गाय के दूध के साथ करना चाहिये।

इस आसन के अभ्यासु को अत्यधिक गरीष्ठ पदार्थों का सेवन टालना चाहिये। उष्णवीर्य वाले भोजनद्रव्य से भी दूर रहना चाहिये।

व्यसनों का सेवक व्रतों का परिपालन नहीं कर सकता। अतः व्यसनों को दूर से ही छोड़ देना चाहिये।

मेरे गुरुदेव परम पूज्य सिद्धान्त-चक्रवर्ती, आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज सदैव यही कहा करते थे-

जिस साधक ने आसनों का भली-भाँति अभ्यास नहीं किया है, वह अपने व्रतों को परिशुद्ध नहीं रख सकता। आसन शरीर को सुस्थिर करता है, जिससे कायगुप्ति की परिपालना सहज ही हो जाती है। आसन केवल शरीर को ही नहीं, मन को भी प्रभावित करते हैं। फलतः साधक कषायों के मायाजाल से और आवेगों से मुक्त रह पाता है। रोगयुक्त जीव धर्म्यध्यान का पात्र ही नहीं हो सकता। आसन शरीर को रोगों से मुक्त रखने का कार्य करते हैं, जिससे साधना का मार्ग प्रशस्त होता है। अतः साधक को नियमपूर्वक प्रतिदिन आसनों का अभ्यास करना चाहिये।



भुजंगासन

सर्प को भुजंग कहते हैं। इस आसन को करते समय शरीर की आकृति सर्प-फणा के समान होती है। इसीलिये इस आसन को भुजंगासन कहते हैं। कुछ योगशास्त्रज्ञ इस आसन को सर्पासन भी कहते हैं। ध्यातव्य है कि सर्पासन के नाम से एक और आसन है।

विधि :-

सर्व प्रथम सीधे फैले हुये दोनों पैरों को मिला करके पेट के बल पर सो जाइये। पैरों के दोनों अंगूठो को खींच कर रखिये।

हाथों को मस्तक की ओर ले जाइये तथा पैर के अंगूठे, नाभि, छाती, कपाल और हाथों के तलवे, ये सब पृथ्वी के सम तल में होने चाहिये। पश्चात् हाथों को धीरे-धीरे कमर की ओर ले जाइये। उसी प्रकार माथा और छाती को भी अतिशय मन्दगति से पीछे की ओर ले जाइये अर्थात् ऊपर की ओर उठाइये। पेट और नाभि को पृथ्वी पर स्पर्शित करने की अवस्था में स्थिर रखना चाहिये। अन्तिम स्थिति में आराम के साथ कुछ काल तक स्थित रहिये। आकाश की ओर देखते रहिये। पाँच से दस सेकन्द तक श्वास को रोक कर रखिये। उसके उपरान्त श्वास को धीरे-धीरे छोड़ते हुये मस्तक को भी पृथ्वी पर झुकाना प्रारम्भ कीजिये एवं मस्तक को किसी भी कनपटी के सहारे रखिये। कुछ देर शरीर को विश्राम दीजिये। विश्राम के उपरान्त दुबारा इस आसन को दुहराइये।

समय :-

इस आसन की एक आवृत्ति में एक से दो मिनट का काल लगना चाहिये। इस प्रकार एक दिन में पाँच आवृत्तियाँ की जा सकती है। यह कालावधि सिद्धसाधक की अपेक्षा से है। आरम्भिक काल में इस आसन के लिये दस सेकन्द का समय पर्याप्त माना जा सकता है।

लाभ :-

यह आसन भूख को उत्तेजित करता है।

इस आसन से कोष्ठबद्धता दूर होती है।

स्वास्थ और यौवनशक्ति को प्रदान करने वाला होने से यह आसन अत्यन्त आवश्यक माना गया है।

साधारणतया यह आसन उदर के सम्बन्धित समस्त अंगों, विशेषरूप से हृदय, और गुर्दों के लिये लाभदायक है।

अपचन, पेचिश, वायुविकार, पेटदर्द तथा पेट की अन्य गड़बडियों को दूर करने के लिये यह बहुत अच्छा आसन है।

यह आसन रीढ़ की हड्डी को लचीला बना कर मेरुदण्ड की अव्यवस्थाओं तथा पीठ के दर्द को ठीक करता है।

इस आसन से गर्भाशय की शुद्धि होती है।

कफज और पित्तज रोगों में यह आसन अत्यन्त लाभदायक है।

यह आसन हृदय को सबल बनाता है।

शरीर की सुदृढ़ता का विकासक होने से यह आसन सभी का मित्र है।

शारीरिक उष्णता की मात्रा को बढ़ाने के लिये इस आसन का अभ्यास करना आवश्यक है।

मासिकधर्म की अनियमितता के कारण पीड़ित होने वाली महिला को यह आसन अवश्य करना चाहिये।

इस आसन से महिलाओं के यौवन की सुरक्षा होती है और सौन्दर्य की अभिवृद्धि होती है।

इस आसन का अभ्यास करने वाली महिला का प्रसव सुखपूर्वक होता है।

सावधानियाँ :-

इस आसन को करते समय किसी भी अवयव को उठाने में शीघ्रता नहीं करनी चाहिये। आसन की प्रत्येक क्रिया सहजरूप से होनी चाहिये।

गर्भवती महिला को यह आसन नहीं करनी चाहिये।

जिस व्यक्ति को पेट में घाव हो, हर्निया हो अथवा आँत की व्याधि हो, उसे इस आसन का नियमितरूप से प्रयोग करना चाहिये।

चुल्लिका-ग्रन्थि की अधिक क्रियाशीलता से पीड़ित साधक को किसी योगप्रशिक्षक की अनुमति के बिना यह आसन नहीं करना चाहिये।

इस आसन के उपरान्त मकरमुखासन करना चाहिये।

भृंगासन

भौरे को भृंग कहते हैं। जिस आसन को करते हुये शरीर की आकृति छह पैरों वाले भौरे के समान होती है। इसीलिये इस आसन को भृंगासन कहते हैं। इसे भ्रमरासन भी कहते हैं।

विधि :-

सबसे पहले पृथ्वी तल पर ठीक से बैठ जाइये। तदुपरान्त घुटनों को मोड़ कर पैरों को पीछे की ओर ले जाइये। दायी एड़ी पर दाया नितम्ब और बायी एड़ी पर बाया नितम्ब टिका कर पंजों के बल पर लेट जाइये। पैर की एड़ियाँ एक-दूसरे से मिली हुयी रहनी चाहिये।

तदुपरान्त दीर्घ श्वास लेते हुये धीरे-धीरे सामने की ओर झुक जाइये तथा दोनों कुहनियों को घुटनों के बीच में रखते हुये कुहनी के द्वारा हथेलियों तक के भाग को पृथ्वी पर जमा दीजिये। हाथों की अंगुलियाँ परस्पर में मिली हुयी होनी चाहिये। उपर्युक्त स्थिति में सुखपूर्वक जितनी देर स्थिर रह सकते हैं, रहना चाहिये। श्वास को बाहर निकालते हुयेपुनः पूर्ववर्ती स्थिति में आना चाहिये।

समय :-

लगभग एक से दो मिनट तक इस आसन को करना चाहिये।

लाभ :-

इस आसन के अभ्यास से कन्धों, बाँहों और पैरों की निर्बलता दूर होती है।

मूत्रोत्सर्जनक्रिया विधिवत् पूर्ण करने में यह आसन सहायक बनता है।

इस आसन से पाचनशक्ति में वृद्धि होती है।

यह आसन पेट के भारीपन को दूर करता है।

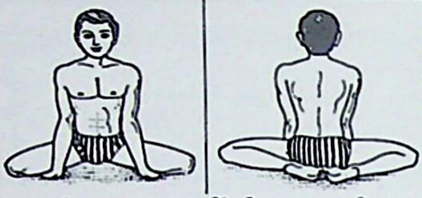
उदरवात, कब्ज और अन्य उदरविकारों को यह आसन विनष्ट करता है।

वज्रासन से प्राप्त होने वाले लाभ भी इस आसन को करने से प्राप्त होते हैं।

इस आसन को करने से कुहनियाँ और भुजदण्ड बलिष्ठ होते हैं।

सावधानियाँ :-

इस आसन के उपरान्त मकरमुखासन करना चाहिये।



मण्डुकासन

संस्कृतभाषा में मेण्ढक को मण्डुक कहते हैं। इस आसन को करते समय शरीर की आकृति मेण्ढक के समान होती है। अतः इसे मण्डुकासन कहते हैं।

विधि :-

पृथ्वी तल पर मुलायम कपड़ा बीछा कर उस पर घुटनों को इस प्रकार रखिये, जिससे मुड़े हुये पैरों के दोनों अंगूठे आपस में मिल जाने चाहिये। दोनों मिली हुयी एड़ियों पर दोनों नितम्ब रख कर सीधा बैठ सके। तत्पश्चात् दोनों हाथो को मुड़े हुये घुटनों पर फैला कर रख दीजिये। यहाँ तक सुप्तवज्रासन की क्रिया हुयी।

तदुपरान्त बाये घुटने को बायी और दाये घुटने को दायी ओर करते हुये दोनों में दूरी लाइये। घुटनों में दूरी हो जाने के उपरान्त शरीर को सीधा करना चाहिये। दृष्टि को सामने रखना चाहिये। इस समय स्वाभाविक श्वास लेनी चाहिये। इस अवस्था में दस से बारह सेकन्द तक बैठे रहिये। पुनः विलोमक्रम से पूर्वस्थिति में आ जाइये। कुछ समय रुक कर इस आसन को दुहराया जा सकता है।

समय :-

पहले सप्ताह में प्रतिदिन दो बार इस आसन को करना चाहिये। एक आवृत्ति में लगभग पच्चीस से पैंतीस सेकन्द लगने चाहिये। शनैः शनैः इस आसन के काल को बढ़ाते जाना चाहिये।

लाभ :-

यह आसन पेट की वायु को बाहर निकालता है।

इस आसन से पैरों में शक्ति का संचार होता है।

इस आसन को नियमितरूप से करने पर गठियारोग में लाभ पहुँचता है।

यह आसन पाचनशक्ति को बढ़ा कर भोजन को शीघ्र पचाता है।

शरीर को निरोगी एवं फुर्तीला बनाने के इच्छुक को यह आसन करना चाहिये।

जंघाओं, कुल्हों तथा पेट के भागों का वजन घटाने के कार्य में इस आसन को अत्यधिक प्रभावकारी माना गया है।

यह आसन बवासीर का विनाशक है।

इस आसन को करने से यौनक्षमता बढ़ती है। लैंगिक समस्याओं से समाधान पाने के लिये इस आसन को करना चाहिये।

स्त्री-पुरुष दोनों की मांसपेशियों तथा शरीर के नीचले भागों के स्नायुओं को सुडौल बनाने के कार्य को यह आसन भली-भाँति करता है।

यह आसन स्त्रियों के जननांगों का संरक्षक है।

यह आसन अन्तस्रावी ग्रन्थियों को कार्यक्षम बनाता है।

पद्मासन करते से जो शारीरिक लाभ प्राप्त होते हैं, वे सारे लाभ इस आसन को करने से भी प्राप्त होते हैं।

निद्रानाश, हिस्टिरिया और दमा जैसे रोगों का विनाश करने के लिये इस आसन का नियमितरूप से प्रयोग करना चाहिये।

शरीर के किसी गुप्तस्थान पर गाँठ हो गयी हो तो उसको दूर करने के लिये यह आसन अवश्य करना चाहिये।

शारीरिक, मानसिक एवं स्नायविक समस्याओं से छुटकारा पाने के लिये इस आसन का अनुप्रयोग आवश्यक माना गया है।

स्वप्नदोष हृदयरोग और प्रमेह जैसी व्याधियों का नाश करके लिये इस आसन से सहयोग प्राप्त होता है।

इस आसन को करने से धीरे-धीरे मांसपेशियों का व्यायाम होने के कारण पैरों में लचीलापन आता है।

मुख की तेजस्विता और स्वभाव में प्रसन्नता की अभिवृद्धि करने के लिये इस आसन को नियमितरूप से किया जाना चाहिये।

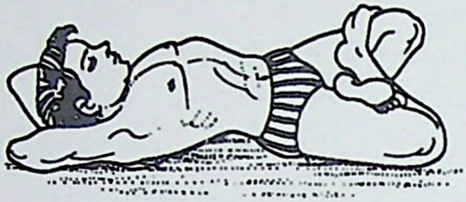
इस आसन को करने से कुष्ठ, रक्तपित्त, पक्षाघात, क्षय, मलावरोध, दमा, कैंसर, त्वचारोग, उदरकृमि, नपुंसकत्व और वन्ध्यत्व जैसे रोगों नष्ट होते हैं।

सावधानियाँ :-

इस आसन के बाद सुखासन करना चाहिये।

मासिकधर्म के काल में और गर्भावस्था में इस आसन को नहीं करना चाहिये।

आरम्भ में इस आसन को करने में कुछ कठिनाई हो सकती है, किन्तु शरीर में लचीलापन बढ़ने से इस आसन को करने में सुगमता होती है। आरम्भिक दिनों में किसी के मार्गदर्शन में इस आसन का अभ्यास करना चाहिये।



मत्स्यासन

इस आसन में शरीर का आकार मछली जैसा बनता है। इसीलिये इस आसन को मत्स्यासन कहना समुचित है।

विधि :-

पद्मासन से सीधे बैठ जाइये। उसके बाद हाथों का सहयोग लेते हुए धीरे-धीरे पीछे की ओर झुकते जाइये। इतना झुकना है कि मस्तक और पीठ भूमि का स्पर्श करने लगे। अत्यन्त सावधानीपूर्वक लेट जाइये। लेटने के बाद बाये हाथ से दाये पैर के अंगुठे को पकड़ लीजिये और दाये हाथ से बाये पैर के अंगुठे को पकड़ लीजिये। यदि आप चाहे तो कमर से ऊपर पीठ तीरछी करके छाती को ऊपर उठाया जा सकता है। मस्तक और नितम्ब तो भूमि पर स्थिर होगा तथा केवल पीठ ऊपर रहेगी। शरीर को ढीला छोड़ कर श्वास की प्रतिक्रिया शनैः शनैः जारी रखिये। दो से तीन मिनट के बाद उठ कर बैठ जाइये। फिर, श्वास लेकर पुनः इसी क्रिया को दुहराये।

इस आसन को सिद्धासन अथवा सुखासन से भी किया जा सकता है। परन्तु, लाभ की दृष्टि से पद्मासनपूर्वक आसन करना चाहिये।

समय :-

प्राथमिक दशा में लगभग दो मिनट तक यह आसन किया जा सकता है। अभ्यास होने पर समय को बढ़ा देना चाहिये।

लाभ :-

इस आसन को करने से सम्पूर्ण शरीर बलशाली बनता है।

उदर, गला, छाती आदि अवयवों की व्याधियों को यह आसन दूर करता है।

इस आसन को करने से कब्ज और मन्दाग्नि दूर होती है।

यौनकेन्द्रोंसहित पूर्ण सुषुम्ना को बलवान बनाने में तथा सक्रिय करने में यह आसन सहयोग प्रदान करता है।

इस आसन से फैंफडों और छाती की पेशियों में मजबूती आती है।

इस आसन को करने पर मेरुदण्ड अन्त तक सीधा रहता है।

दमा और खाँसी में यह आसन अत्यन्त लाभदायक है।

इस आसन के अभ्यास से नेत्रज्योति बढ़ती है।

इस आसन के द्वारा आँतों में जमा हुआ मैल दूर किया जा सकता है। फलतः उदररोगों का विनाश होने में सहयोग मिलता है।

यह आसन छाती को चौड़ी बना कर पेट की चर्बी को कम कर देता है।

इस आसन को करने से श्वास की क्रिया समीचीन रूप से चलती है।

इस आसन के कारण रक्तप्रवाह की गति बढ़ जाती है।

यह आसन त्वचारोगों का शत्रु है।

इस आसन के माध्यम से यकृत, प्लीहा एवं आमाशय की मालीश होती है, जिससे पाचन एवं मल-विसर्जन की क्रिया सम्यक् रूप से होती है।

यह आसन अपानवायु को निम्नगतिशील बनाता है।

यह आसन मोटापे को कम करता है।

यह आसन शरीर को सुडौल और सुन्दर बनाता है।

यह आसन दिल और दिमाग को पुष्ट बनाता है।

यदि किसी को धरण हुआ हो तो यह आसन उसका अचूक इलाज है।

इस आसन को करने से भूख भली-भाँति लगती है, जिससे अपचन दूर होता है तथा मन्दाग्नि भी दूर होती है।

यह आसन स्त्रियों के मासिकधर्म-सम्बन्धी समस्त रोगों को ठीक करके उसे नियमित बनाता है।

सावधानियाँ :-

सन्तुलन बनाने के लिये सर्वांगासन के बाद मत्स्यासन किया जाता है।

आसन करते समय शरीर पर अधिक जोर नहीं देना चाहिये।

आसन करते समय श्वाँसों की प्रक्रिया पर अवश्य ध्यान देना चाहिये।

कण्ठ के रोगियों को यह आसन नहीं करना चाहिये।

आरम्भिक काल में अधिक समय तक इस आसन को नहीं करना चाहिये।

इस आसन को करते समय मस्तक के नीचे पतला कपड़ा अथवा नरम कपड़ा अवश्य लगाना चाहिये। इससे शारीरिक पीड़ा नहीं होगी।

इस आसन के उपरान्त सुखासन से विश्राम करना चाहिये।



मयूरासन

इस आसन को करते समय शरीर की आकृति मयूर के समान बनती है। अतः इस आसन को मयूरासन कहते हैं।

विधि :-

उकड़ूं बैठ जाइये। दोनों हथेलियों को घुटनों के बीच जमीन पर भली-भाँति जमा लीजिये। अंगुलियाँ पैरों की ओर पीछे रखिये। हाथों को कुहनियों के पास मोड़ कर पेट से सटा दीजिये। धीरे-धीरे सामने की ओर झुकिये। पश्चात् शरीर का भार कलाइयों पर रखे दोनों पैरों को भूमि से ऊंचा उठाइये। पैर पूर्ण रूप से सीधे रहेंगे-इसका ध्यान रखना चाहिये। यदि आप मस्तक से पाँव तक सीधे होकर जमीन के समानान्तर रहते हैं तो यह हंसाहन की स्थिति हुयी। हंसासन मयूरासन की आरम्भिक अवस्था है। दोनों पैरों को जहाँ तक ले जा सके, उतना ऊपर ले जाइये। यह मयूरासन हुआ।

छह से आठ सेकन्दपर्यन्त इस अवस्था में रह कर सावधानीपूर्वक मूल अवस्था में लौट आइये। इस आसन का विसर्जन करते समय सबसे पहले पैरों को भूमि पर रखना चाहिये। श्वास की गति सामान्य होने पर इस आसन की पुनरावृत्ति की जा सकती है।

समय :-

श्वास को जितनी देर तक रोका जा सकता है, उतने समय तक इस आसन को करना चाहिये। इस आसन को पाँच सेकन्द से बीस सेकन्द पर्यन्त किया जा सकता है।

लाभ :-

इस आसन के द्वारा पेट की पेशियों का प्रसारण-संकुचन होने से सभी अंग लाभान्वित होते हैं। विशेषकर कुहनियों और हथेलियों को शक्ति मिलती है।

यह आसन पाचनक्रिया को बढ़ाता है।

इस आसन से शारीरिक चयापचयक्रिया प्रेरित होती है। अतः शरीर के विभिन्न अंगों के रसस्राव में वृद्धि होती है।

इस आसन के माध्यम से चर्मरोग, फोड़े आदि दूर होते हैं।

यह आसन अन्ननलिका एवं आँतों को त्याज्य पदार्थों से रिक्त करता है।

रक्त से विषैले पदार्थों को दूर करके उसका शुद्धिकरण करने में यह आसन सहयोगी बनता है।

मधुमेह के रोगियों को इस आसन का अभ्यास अवश्य करना चाहिये।

रक्ताल्पता और रक्तविकारों को दूर करने के लिये यह आसन अतिशय उपयोगी माना गया है।

वात, पित्त और कफ, इन तीन दोषों की शुद्धि करने के लिये इस आसन का प्रयोग उत्तम माना गया है।

पेट का ट्यूमर, जलोदर, तिल्ली, लीवर की वृद्धि, उदरवायु आदि अनेक प्रकार के रोगों में यह आसन शीघ्र लाभ पहुँचाता है।

इस आसन का अभ्यास करने से दृष्टिदोष और मस्तिष्कशूल दूर होता है।

यह आसन मस्तक, गरदन, पीठ, हाथ, पेट, पैर, जंघा आदि अवयवों को सम्यक् व्यायाम दिलाता है।

इस आसन के अभ्यास से त्रिदोषों का शमन होकर धातुसाम्यता रहती है।

सावधानियाँ :-

इस आसन का अभ्यास करने से पूर्व हंसासन करना चाहिये।

यह आसन अत्यन्त कठिन है। इसीलिये इसका अभ्यास किसी विशेषज्ञ के निरीक्षण में ही करना चाहिये। जिन्हें सामान्य आसनों का अभ्यास हो चुका है और जिनका शरीर लचीला हो गया है, उनको ही यह आसन करना चाहिये।

इस आसन के तत्काल बाद मस्तक के बल किये जाने वाले आसनों का अभ्यास नहीं करना चाहिये।

इस आसन को करते समय शीघ्रता नहीं करनी चाहिये।

शरीर को थकाये बिना इस आसन का अभ्यास करना चाहिये।

गर्भवती महिलाओं को यह आसन नहीं करना चाहिये।

युवावस्था में ही इसका अभ्यास करना उचित माना गया है।

इस आसन को करते समय साधक का ध्यान मणिचक्रपुर पर रहना चाहिये।

इस आसन के उपरान्त शारीरिक थकावट को दूर करने के लिये मकरमुखासन अथवा शवासन करना चाहिये।



मेरुदण्डासन

विधि :-

भूमि पर बैठ कर पैरों को फैला दीजिये। तदुपरान्त उन्हें घुटनों से मोड़िये। तलवों को नितम्बों के सम्मुख रखिये। दोनों पैरो में कम से कम आधा मीटर का अन्तर होना चाहिये। तत्पश्चात् हाथों की अंगुलियों से पैरों के अंगुठों को पकड़िये। कमर को धीरे-धीरे झुकाइये और दोनों पैरों को सीधा कीजिये। हाथों एवं पैरों में जितना तनाव दिया जा सकता है, उतना तनाव देना चाहिये। प्रारम्भिक अवस्था में पूरक, पैरों को फैलाते समय कुम्भक और आसन के अन्त में रेचक करना चाहिये। कुछ समय इस स्थिति में स्थिर रह कर पुनः पूर्वावस्था में आ जाइये। दृष्टि को नासाग्र रखना चाहिये।

समय :-

प्रारम्भ में यह आसन एक मिनट तक करना चाहिये। धीरे-धीरे इस काल को बढ़ाया जा सकता है।

लाभ :-

यह आसन पैरों और बाहों को बल देता है।

इस आसन के द्वारा शरीर बलवान और फुर्तीला बनता है।

इस आसन को करने से पाचनक्रिया ठीक रहती है।

पीठ, नाभि और पेट को स्वस्थ रखने के लिये इस आसन को करना चाहिये।

यह आसन यकृत तथा अन्य उदरस्थ अंगों को क्रियाशील बनाता है।

आँतों में स्थित कीटाणुओं को दूर करने में यह आसन सहयोग करता है।

यह आसन एकाग्रता एवं सन्तुलनशक्ति को बढ़ाता है।

वात, पित्त और कफ, इन तीन दोषों का विनाश कर सम्पूर्ण शरीर को स्वस्थ बनाने में यह आसन सहयोग प्रदान करता है।

सावधानियाँ :-

इस आसन को करने के उपरान्त सुखासन से विश्राम करना चाहिये।

साइटिका के रोगियों को यह आसन नहीं करना चाहिये।



वज्रासन

इस आसन को करने से वीर्य ऊर्ध्वगतिशील होता है, जिससे शरीर वज्र के समान सुदृढ़ होता है। इसीलिये इस आसन को वज्रासन कहते हैं।

विधि :-

नमाज पढ़ने वालों की शारीरिक आकृति जैसी होती है, उसी आकृति में बैठ जाइये। दोनों पैरों की एड़ियाँ नितम्बों से सटी हुयी होनी चाहिये। पैरों के पंजों को एक दूसरे पर चढ़े हुये होने चाहिये। कमर को बिलकुल सीधी रखिये। दोनों हाथों करे घुटनों पर हथेलियों की ओर से टिका कर रखिये।

आँखें बन्द करके यह आसन किया जाये तो मानसिक शान्ति प्राप्त होगी। श्वास लम्बी, गहरी और धीरे-धीरे चलती रहनी चाहिये। छाती फैली हुयी और पेट पूर्णरूप से पिचका हुआ होना चाहिये।

समय :-

इस आसन का अभ्यास जितने अधिक समय तक किया जा सकता है, उतने समय तक अवश्य करना चाहिये।

यह ऐसा इकलौता आसन है, जो भोजन के उपरान्त किया जा सकता है।

फल :-

यह आसन मेरुदण्ड को सशक्त और सीधा करता है।

इस आसन को करने से पाचनशक्ति की आशातीत वृद्धि होती है।

यह आसन स्त्री और पुरुषों के यौनांगों को शक्ति प्रदान करता है।

सिरदर्द, आलस्य, शरीर में कड़ापन, क्रोध, चिन्ता, भय, यौनग्रन्थियों की कार्य -शीलता में मन्दता, किड़नी के काम में सुस्ती इत्यादिक विकृतियों की स्थिति में यह आसन नियमितरूप से करना चाहिये।

उदरवायु का नाश इस आसन के द्वारा होता है।

यह आसन कब्ज को दूर करके उदररोगों से मुक्ति दिलाता है।

यह आसन पाण्डुरोग का विनाशक है।

आन्त्रवृद्धि से पीड़ित साधकों को यह आसन करना चाहिये।

रीढ़, कमर, घुटना और दोनों पैरों की शक्ति का वर्द्धन करने में यह आसन सहयोगी बनता है।

इस आसन के कारण कमर और पैरों का वातरोग दूर होता है।

नेत्रज्योति का विकास करने में यह आसन करावलम्बन देता है।

यह आसन गर्भाशय, आमाशय, पक्वाशय आदि में रक्तप्रवाह की मात्रा को सुव्यवस्थित करता है।

स्नायविकबल की प्राप्ति के लिये इस आसन को करना आवश्यक है।

पेट के रोग, छाले आदि से छुटकारा दिलाने में यह आसन सहायक बनता है।

इस आसन को करने से मधुमेह दूर होता है।

साइटिका और रीढ़ के नीचले भाग में किसी प्रकार के कष्ट से ग्रस्त लोगों के लिये यह आसन मित्र के समान सहयोग करता है।

यह आसन जीर्ण मलावरोध का प्रबल विरोधी होने से मल के सम्यक् निष्कासन में अत्यधिक सहयोगी बनता है।

यह आसन मन की चंचलता को दूर कर स्थिर बुद्धि वाला बन जाता है।

इस आसन के द्वारा रक्ताभिसरण की क्रिया सुव्यवस्थित होने के कारण शरीर निरोगी और सुदृढ़ बनता है।

वज्रनाड़ी को अर्थात् वीर्यधारा नाड़ी को पुष्टि प्रदान करने के लिये यह आसन विशेषरूप से उपयोगी है।

जिन्हें विशेषरूप से उदररोगों की पीड़ा हो अथवा भोजन के पाचन में कठिनायी हो, उन्हें यह आसन अवश्य करना चाहिये।

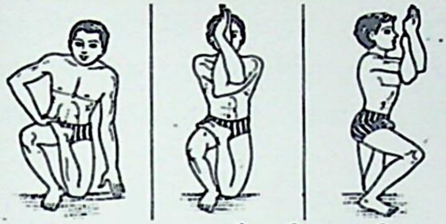
यह आसन शुक्रदोष और वीर्यदोष को दूर करता है।

मानसिक निराशा को दूर करने के लिये यह आसन उपयोगी है।

सावधानियाँ :-

जिनकी हड्डियाँ लचीली न हो, उन्हें भूमि पर हाथ रख कर इस आसन का अभ्यास करना चाहिये। धीरे-धीरे भूमि का सहारा छोड़ कर हाथों को घुटनों पर रखने का अभ्यास करना चाहिये।

अर्श के रोगियों को यह आसन नहीं करना चाहिये।



वातायनासन

वातायन का अर्थ झरोखा, रोशनदान अर्थात् खिड़की है। इस आसन से शरीर की आकृति तदनुरूप बनायी जाती है। इसीलिये इसे वातायनासन कहते हैं।

विधि :-

पैरों को परस्पर मिलाते हुये सीधे खड़े हो जाइये। फिर, दाये पैर का घुटना मोड़िये और उसकी एड़ी को वाम जाँघ के मूलभाग पर स्थापित कीजिये। दोनों हाथों को जंघाओं से कुछ दूरी पर रखिये। अंगुलियाँ परस्पर मिली हुयी होनी चाहिये। उनका पृष्ठभाग सामने की ओर रहना चाहिये।

एक मिनट से तीन मिनट तक इसी स्थिति में स्वाभाविक रीति से श्वास को लेते और छोड़ते हुये स्थिर भाव से खड़े रहिये। यह ध्यान रहे कि हाथ, कमर, मेरुदण्ड, ग्रीवा और सिर सब तने हुये एंक सीध में रहने चाहिये। सीना उभरा हुआ होना चाहिये और दृष्टि सामने की ओर होनी चाहिये।

तदनन्तर दाहिने पैर को धीरे-धीरे नीचे लाकर भूमि पर स्थापित कीजिये। उपर्युक्त पद्धति से बाये पैर से भी यही क्रिया करनी है।

इसी विधि और इसी क्रम से एक से तीन बार तक यह आसन प्रतिदिन किया जा सकता है।

समय :-

प्रारम्भ में बीस से तीस सेकन्द तक ही शरीर को एक पैर पर साधने का अभ्यास करना चाहिये।

धीरे-धीरे प्रति सप्ताह पन्द्रह-पन्द्रह सेकन्द बढ़ाते हुये आसन की अवधि को तीन मिनट तक ले जाना चाहिये।

लाभ :-

यह आसन शारीरीक उत्साह व मानसिक प्रसन्नता को बढ़ाने में अतिशय सहयोगी होता है।

इस आसन के अभ्यास से घुटने, कमर, पेट, मेरुदण्ड, ग्रीवादि अंगों का अच्छा व्यायाम होता है, जिससे इन अंगों की मांसपेशियों और नस-नाड़ियों में स्वास्थ्यकर तनाव उत्पन्न होता है। वह तनाव शिथिलन-शोधन और पोषण करता है।

शुद्ध रक्त अधिक मात्रा में मिलने से तत्सम्बन्धित अंग सुपुष्ट हाते हैं।

इस आसन के नियमित अभ्यास से आमवात, सन्धिवात (गठिया), कटिशूल, हार्निया, शीघ्रपतन और स्वप्नदोष जैसे रोग दूर होते हैं।

इस आसन को करने से मेरुदण्ड की पुष्टता और प्रदर्शित क्रिया के साथ-साथ विचारशीलता, सात्त्विकता यथा आत्म-प्रसन्नता आती है।

इस आसन का प्रयोग करने से एकाग्रता की वृद्धि होती है।

इस आसन से रीढ़ की हड्डीविषयक विकार दूर होते हैं।

इस आसन के कारण श्वासप्रणाली में तनाव उत्पन्न होता है। इससे हृदयरोग तथा श्वासरोगों से मुक्ति मिलती है।

यह आसन रक्ताभिसरण की प्रक्रिया को सुचारु बनाता है।

यह आसन गठिया जैसे रोगों का विनाशक है।

इस आसन को करने से स्मरणशक्ति का विकास होता है।

यह आसन मूत्राशय को प्रभावित करता है। इससे मूत्रविषयक पथरी आदि समस्त रोगों का विनाश होता है।

इस आसन को करने से पाचनशक्ति और सहनशक्ति का विकास करता है।

इस आसन का अभ्यास करने से पीठ और कन्धों की पीड़ा दूर होती है।

यह आसन उदरकृमियों का महाशत्रु है।

रजस्वला अवस्था में होने वाली बेचैनी, आने वाली शिथिलता और प्राणान्तक पीड़ा को यह आसन सहज ही दूर करता है।

यह आसन तीन दोषों का विनाश कर शरीर को स्वस्थ बनाता है।

इस आसन के द्वारा पिण्डली, घुटने, जंघायें, पेट, पीठ, कन्धे, हाथ, गर्दन आदि समस्त जोड़ों, बन्धनों और मांसपेशियों का सम्यक् नियमन होता है।

सावधानियाँ :-

शरीर-सन्तुलन में अधीरता उचित नहीं है।

आसन की समाप्ति पर विश्राममुद्रा में खड़े रहिये।

शयनोत्थानासन

सोकर उठते समय शरीर की जो क्रिया होती है, वही क्रिया इस आसन में की जाती है। अतः इसे शयनोत्थानासन कहते हैं।

विधि :-

पीठ के बल पर लेट जाइये। पैरों को परस्पर मिला लीजिये। एड़ी से एड़ी मिली हुयी होनी चाहिये। घुटने भी घुटनों से सटे हुये होने चाहिये। शरीर के किसी भी अंग में शिथिलता और वक्रता नहीं होनी चाहिये। धीरे-धीरे रेचक प्राणायाम को करते हुये सिर, गर्दन तथा हाथों को उठाते हुये कमान के आकार में अवस्थित हो जाइये। इस स्थिति में पेट पर पर्याप्त मात्रा में बल पड़ना चाहिये। दोनों हाथ सीधे और मिले हुये रहना चाहिये। हथेलियाँ खुली और ऊपर की ओर तनी हुयी होनी चाहिये। पाँच से दस सेकन्द तक इस स्थिति में रह कर पूरक करते हुये धीरे-धीरे लेट जाइये।

समय :-

एक आवृत्ति में पन्द्रह सेकन्द से बीस सेकन्द लगने चाहिये। एक दिन में इस आसन की पाँच से पन्द्रह आवृत्तियाँ होनी चाहिये।

लाभ :-

इस आसन के कारण दोनों हाथों की नस-नाड़ियों और मांसपेशियों की शिथिलता दूर होकर उनमें सबलता आती है।

उदरगुहा और उदरपेशियों पर इस आसन का सुखकर प्रभाव पड़ता है।

मोटापा घटाने के लिये इस आसन को उपयोगी माना गया है।

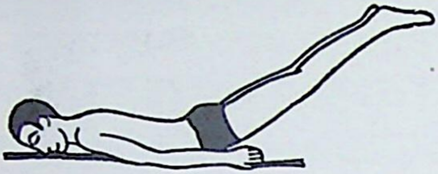
यह आसन पाचकाग्नि को बढ़ा कर कब्ज को दूर करता है।

यह आसन बल-वीर्य का वर्द्धक है।

तिल्ली, प्लीहा, मूत्राशय और अग्न्याशय के रोगों से पीड़ित रोगियों को यह आसन प्रतिदिन नियमपूर्वक करना चाहिये।

सावधानियाँ :-

इस आसन के बाद मकरमुखासन करना चाहिये।



शलभासन

शलभ का अर्थ पतंगा है। इस आसन को करते समय शरीर की आकृति पतंगे के समान होती है। अतः इसका शलभासन यह सार्थक नाम है।

विधि :-

समतल भूमि पर पेट के बल लेट जाइये। मुख को जमीन की ओर ही रखिये। दोनों हाथों की हथेलियों को जाँघों से दबाते हुये बाहों को तान दीजिये। ठुड्डी भी तनी हुयी होनी चाहिये। दोनों एड़ियाँ एक दूसरे से सटी हुयी होनी चाहिये। धीरे-धीरे श्वास लेते हुये तथा बाहों, हाथों और छाती पर दबाव डालते हुये पैरों को ऊपर उठाइये। नाभि तक का भाग जमीन से ऊपर उठा लेना चाहिये। तदुपरान्त श्वास छोड़ते हुये पैरों को जमीन पर लाना चाहिये।

समय :-

इस आसन को प्रतिदिन चार बार करना चाहिये। शक्ति के अनुकूल समय का निर्द्धारण स्वतः साधक को ही कर लेना चाहिये। हाँ, आरम्भिक दिनों में इस आसन का अभ्यास दस से पन्द्रह सेकन्दों तक किया जाना चाहिये। प्रत्येक सप्ताह में दस सेकन्द का समय बढ़ाना चाहिये। क्रम से समय को बढ़ाते हुये इस आसन को दो से तीन मिनट तक करना चाहिये।

लाभ :-

मानसिक चिन्ता, तनाव, और निराशा की भावना को दूर करने के लिये इस आसन को उत्तम साधन माना गया है।

इस आसन की साधना से स्मरणशक्ति का अतीव विकास होता है।

यह आसन बवासीर को दूर करता है।

तिल्ली, प्लीहा, मूत्राशय और अग्न्याशय के रोगों का विनाश करने के लिये इस आसन को नियमपूर्वक करना चाहिये। इससे वे अंग न केवल सबल होते हैं, अपितु दीर्घजीवी भी होते हैं।

उदर से सम्बन्धित रोगों पर इस आसन का विशेष प्रभाव पड़ता है।

यह आसन मेरुदण्ड के नीचले हिस्से को मजबूत करता है।

यह आसन साइटिका नाड़ी को खींच कर हलका करता है।

इस आसन को करने से हृदय पुष्ट होता है।

पेट के विभिन्न रोगों को दूर करने में यह आसन सहयोगी बनता है।

किडनी (वृक्क), जिगर क्लोम तथा पेट के सभी अवयवों को सक्रिय बनाने में यह आसन सहयोग प्रदान करता है।

आन्तरीक सक्रियता के कारण इस आसन से कब्ज, वायुविकार, अपचन, पेशिच, अतिसार, अम्लता एवं पेट तथा आँत की समस्त अव्यवस्थाओं को दूर करने के लिये इस आसन को करना चाहिये।

कमर की मांसपेशियों की क्षीणता को दूर करके कमर को पूर्णतः स्वस्थ और लचीला बनाने का कार्य इस आसन के द्वारा सम्पन्न होता है।

महिलाओं के गर्भाशयविषयक समस्त रोगों का निर्मूलन करने के लिये इस आसन का विधिवत् उपयोग करना चाहिये। इस आसन के कारण मासिक धर्म में नियमितता आती है।

फैफड़ों तथा श्वास से सम्बन्धित समस्त रोगों का विनाश इस आसन के नियमित प्रयोग से किया जा सकता है।

यह आसन रीढ़ में लचीलापन लाने के साथ आँख, चेहरा, फैंफड़े, सीना, कण्ठ, कन्धा तथा शरीर के समस्त ऊपरी अवयवों को शक्ति प्रदान करने का कार्य इस आसन के द्वारा सम्पन्न होता है।

इस आसन के द्वारा उत्सर्जक इन्द्रियाँ बलशाली बनती हैं।

इस आसन को करने से यौनग्रन्थियों पर तनाव पड़ता है। उससे यौनशक्ति का विकास ही नहीं होता, अपितु नपुंसकता भी दूर होती है।

जिन बच्चों को बिस्तर पर मूत्र विसर्जन करने की आदत होती है, उन बच्चों से यह आसन कराना चाहिये।

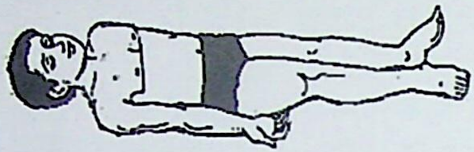
मधुमेह के रोगियों को इस आसन का अभ्यास करने से लाभ पहुँचता है।

सावधानियाँ :-

इस आसन को भुजंगासन व धनुरासन के साथ करना चाहिये।

पेप्टिक अलसर, हर्निया और आँतों के कष्ट से पीड़ित रोगियों को इस आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिये।

कमजोर हृदय वाले साधकों को इस आसन का अभ्यास निषिद्ध है।



शवासन

मृत मनुष्य के शरीर को शव कहते हैं। शव किसी प्रकार की क्रिया और प्रतिक्रिया नहीं करता। शव के समान ही इस आसन में क्रिया और प्रतिक्रियाओं का निरोध होने से इस आसन को शवासन कहा जाता है।

यह आसन तन और मन को पूर्ण विश्राम पहुँचाता है। दैनिक शारीरिक और मानसिक क्रिया सम्पन्न करते समय मनुष्य की शक्ति का क्षरण होता ही है। क्रियाओं के कारण नसों और पेशियों में तनाव उत्पन्न होता है। उससे रुधिर की ऊष्मा भी बढ़ती है। फलतः शरीर में स्फूर्ति को कायम करने वाले सूक्ष्मकोशों का क्षरण होता है। जब रक्त में मृतकोशों की संख्या अधिक हो जाती है, तब रक्ताभिसरण की प्रक्रिया मन्द होने लगती है। यही कारण है कि साधक थकान और विषाद का अनुभव करने लगता है। इससे मुक्ति पाने के लिये शवासन ही एकमात्र उपय के रूप में स्वीकृत है।

इस आसन को कोलाहल से रहित जनशून्य स्थान पर करना आवश्यक है।

विधि :-

पीठ के बल से जमीन पर लेट जाइये। दोनों हाथ अगल-बगल में रहने चाहिये। हथेलियाँ ऊपर की ओर खुली रहनी चाहिये।

दोनों पैरों के मध्य में आठ से नौ इंच का अन्तर रहना चाहिये। आँखों को सहजरूप में बन्द होने दीजिये। सम्पूर्ण शरीर को ढ़ीला छोड़ दिजिये। श्वास को की गति सामान्य रहनी चाहिये। मस्तिष्क को श्वास-प्रश्वासों के प्रति जागरुक रहने दिजिये। मन में किसी भी प्रकार के विचार को प्रवेश नहीं करने देना है, इससे मस्तिष्क सम्पूर्ण रूप से विश्रान्ति को प्राप्त कर सकेगा। इस समय तक शरीर में अत्यधिक शिथिलता का आविर्भाव होगा।

साधक को यह कल्पना करनी चाहिये कि इस आसन के कारण से उत्पन्न हुयी शिथिलता सम्पूर्ण शरीर को अपने स्वामित्व में ले रही है और धीरे-धीरे पैर, जंघायें, पेट, छाती आदि अवयवों को सम्पूर्ण शरीर को निश्चेष्ट बना रहा है।

समय :-

निरापद होने के कारण इस आसन को दीर्घकाल तक भी किया जा सकता है।

लाभ :-

यह आसन न्यूनतम समय में अधिकतम आत्मीय शक्ति का संचय करने में सहयोग प्रदान करता है।

यदि प्रत्येक आसन के बाद तत्तत् आसन से आधे काल तक शवासन किया जाता है तो वह आसन अधिक लाभदायक बनता है।

उच्च रक्तचाप में यह आसन लाभप्रद है।

मानसिक एकाग्रता को प्राप्त करने में यह आसन सहयोगी बनता है।

अनिद्रा, गैस की व्याधियाँ, फैंफड़े तथा हृदय के कष्ट एवं मानसिक रोगों से ग्रस्त साधकों को शीघ्र आराम पहुँचाने के लिये यह आसन अत्युपयोगी है।

जिन्हे कमजोरी, थकावट अथवा उत्साह का अभाव का अनुभव होता है, उन्हें तत्काल यह आसन करना चाहिये।

आध्यात्मिकविकास की दृष्टि से यह आसन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

जब भी बचैनीरूपी नागिन अपना फन फैलाने लगे, साधक भय-शोक-वेदना, ईर्ष्या अथवा द्वेष से सम्पन्न हो तब उसे यह आसन करना चाहिये।

यह आसन आवेशों और आवेगों के प्रवाह को दूर करता है।

ऋषियों ने इसे मनोनिग्रह का अद्भूत उपाय के रूप में स्वीकार किया है।

यह आसन सन्तुलन को साधने में अपूर्व सहयोग देता है।

इस आसन के द्वारा अतीव चैतन्यता प्राप्त होती है।

दीर्घ काल के रोगियों के लिये तो यह आसन मित्रवत् माना गया है।

यह आसन नाड़ीदौर्बल्य, घबराहट आदि समस्याओं का समाधान है।

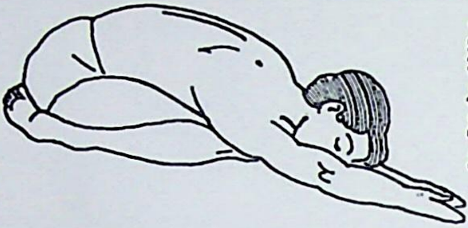
यह आसन अल्पकाल में दीर्घकालीक निद्रा का फल प्रदान करता है।

सावधानियाँ :-

आसन प्रारम्भ करने से पूर्ण जमीन पर चादर अवश्य बिछाइये, इससे शीत के प्रकोप से बचाव होगा।

हाथों की तलवे ऊपर की ओर ही रखे।

इस आसन को करते समय श्वास-प्रश्वास की नियमितता, समानता और दीर्घता पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये।



शशांकासन

इस आसन में शरीर की आकृति खरगोश के समान होती है। इसीलिये इसे शशांकासन कहते हैं।

विधि :-

सर्वप्रथम वज्रासन से बैठ जाइये। तत्पश्चात् गहरी-गहरी साँस लीजिये तथा दोनों बाहुओं को ऊपर करके तान दीजिये। दोनों हाथों की हथेलियाँ खुली हुयी एवं सामने की ओर होनी चाहिये। धीरे-धीरे श्वास को छोड़ते हुये कमर को झुकाइये। बाहों को तानते हुये हथेलियों को भूमि का स्पर्श कराइये। मस्तक को भी भूमि से सटाना आवश्यक है। पुनः धीरे-धीरे हाथों को ऊपर ले जाइये और विलोमक्रम से लौटते हुये वज्रासन में स्थिर हो जाइये।

समय :-

इस आसन का समय क्रम से बढ़ाते हुये जाना चाहिये। अभ्यास के अनुसार ही समय का निर्धारण करना चाहिये।

लाभ :-

इस आसन को करने से स्मृतिदुर्बलता दूर होती है।

इस आसन से फैफडे मजबूत होते हैं।

इसके प्रयोग से बाँहें पुष्ट होती हैं।

यह आसन कमर व रीढ़ को सबल बनाता है।

जंघाओं का बल बढ़ाने के लिये इस आसन का अभ्यास करना चाहिये।

इस आसन का नियमित अभ्यासी साधक उदररोगों से दूर रहता है।

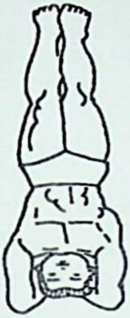
इस आसन का अभ्यास करने से हृदयरोगों से मुक्ति मिलती है।

आँतड़ियाँ, यकृत और अन्त्राशयों पर इसका प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है।

सावधानियाँ :-

गर्भवती महिलाओं को यह आसन नहीं करना चाहिये।

भोजन करने के बाद लगभग तीन घण्टे तक इस आसन को करना निषिद्ध है।



शीर्षासन

इस आसन को मस्तक के बल पर किया जाता है अर्थात् इस आसन को करते समय सम्पूर्ण शरीर का भार मस्तक पर आता है। इसीलिये इसे शीर्षासन कहते हैं।

विधि :-

पृथ्वी तल पर किसी कम्बल या मोटे तौलिये की तीन चार तह करके रखिये, जिससे गद्दी-सी बन जाये। सावधानीपूर्वक अपने घुटने को मोड़ कर गद्दी पर झुक जाइये। दोनों हाथों की अंगुलियों को गद्दी पर टिका दीजिये तथा कुहनियों में कन्धे से अधिक अन्तर रखिये। सिर को गद्दी पर टिका कर दोनों हाथों का सहारा दीजिये, जिससे कुहनियों के सहारे सिर का सन्तुलन बना रहे। तत्पश्चात् पैरों को धीरे-धीरे ऊपर की ओर उठा लीजिये। यथासम्भव इस अवस्था में स्थिर रह कर पुनः विलोमेक्रम से पूर्ववर्ती अवस्था में आना चाहिये।

समय :-

प्रारम्भ में इस आसन को दस से पन्द्रह सेकन्द तक ही करना चाहिये। क्रमशः इस काल को आधे घण्टे तक बढ़ाया जा सकता है।

लाभ :-

जिस प्रकार किसी शिशि की गन्दगी को साफ करने के लिये उसमें पानी भर कर उसे ऊपर, नीचे लोट-पोट करते हैं, उसी प्रकार शीर्षासन रक्तप्रवाह की गति में उलटफेर करके उसे पूर्णरूप से शुद्ध करता है।

आरोग्य को प्रदान करने की इसकी सामर्थ्य को देख कर ही योगविदों नेइसे समस्त आसनों का राजा कहा है।

यह आसन हृदयावसाद को दूर करता है। फलतः हृदय की शक्ति बढ़ने से साधक की आयु भी वृद्धि को प्राप्त होती है।

इस आसन को करने से नेत्रज्योति का विकास तीव्रगति से होता है।

जिनके बाल बहुत झड़ते हैं अथवा बालों में अत्यधिक खुश्की होती है, उनके लिये यह आसन बहुत हितकारी है। बालों की सम्यक् वृद्धि भी होती है।

इस आसन को करने से शरीर की स्फूर्ति बढ़ती है।

वीर्यदोष को मिटाने वाले इस आसन को करने से वीर्य गाढ़ा और ऊर्ध्वमुखी बनता है। इससे ब्रह्मचर्यव्रत के पालन में सुगमता होती है।

यह आसन वीर्य को ओज में परिवर्तित करता है, जिसके फल से शरीर सतेज और आलस्यहीन रहता है।

बुद्धि को सूक्ष्मग्राही बनाने के अभिलाषी साधकों को इस आसन का अभ्यास नियमितरूप से करना चाहिये।

त्वचा की शिथिलता और शुष्कता को दूर करने के लिये इस आसन को करना आवश्यक माना गया है। इससे नस-नस में तरुणाई की आभा फैलती है और साधक के जीवन की दीन-हीनता को दूर करता है।

यह आसन उदर पर पड़ने वाले नाड़ियों के भार को न्यून करता है, जिससे बद्ध अपानवायु स्वयं निस्सरण को प्राप्त होता है। पाचनशक्ति और क्षुधा की भी वृद्धि होती है।

गर्भाशय एवं जननेन्द्रियों के रोगों का विनाश करने के लिये स्त्रियों को इस आसन का अभ्यास करना ही चाहिये। इस आसन के नियमित अभ्यास से अनियमित मासिकधर्म, रक्तप्रदर, बहुमूत्रता, बीजाशय की आवृद्धि, कष्टार्त्तव और गर्भाशयशोथ जैसे स्त्री-रोग विनष्ट होते हैं। यह आसन स्त्रियों के सौन्दर्यवृद्धि का कारक है तथा अंगोपांगों का सुयोग्य विकासक है।

इस आसन से अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का कार्य नियमित और समुचित चलता है।

मस्तिष्क, नाड़ीसंस्थान, श्वसनसंस्थान, पाचनसंस्थान और मलविसर्जनसंस्थान को सशक्त तथा सक्रिय बनाने के लिये यह आसन अत्युपयोगी माना गया है।

सावधानियाँ :-

प्रारम्भ में इसे दीवार के सहारे से करना चाहिये। प्रारम्भिक स्थिति में किसी को पास में अवश्य खड़ा करना चाहिये।

अन्य आसनों का भली-भाँति अभ्यास कर लेने के उपरान्त इस आसन को सावधानीपूर्वक करना चाहिये।

विशेष :-

योगविदों ने इस आसन के कपालासन, विपरीतकरणी, वृक्षासन आदि नाम भी स्वीकार किये हैं।



स्वस्तिकासन

विधि :-

पैरों को सामने की ओर फैला कर छाती और मेरुदण्ड को सीधा रख कर बैठ जाइये। बाये पैर को मोड़िये और पंजे को दायी जांघ की मांसपेशियों के पास रखिये। इसी प्रकार दाये पैर को मोड़िये और पैर की अंगुलियों को बायी जंघा व पिण्डलियों के मध्य में फँसाइये।

दोनों पैर की अंगुलियाँ दोनों जंघाओं और पिण्डलियों के मध्य में रहनी चाहिये। दोनों हाथों को दोनों घुटनों पर ज्ञानमुद्रा अथवा चिन्मुद्रा के रूप में सीधा ही रखिये। दृष्टि नासाग्रभाग पर स्थिर होनी चाहिये। इस अवस्था में कुछ काल व्यतीत कर पूर्वावस्था में क्रमशः लौटना चाहिये।

समय :-

प्रारम्भिक अवस्था में दस से बारह सेकन्द तक इस आसन का अभ्यास कीजिये। शनैः शनैः समय को बढ़ाया जा सकता है।

लाभ :-

ध्यान की सिद्धि के लिये यह असन श्रेष्ठ माना गया है।

यह आसन मन को शान्त और स्थिर बनाता है।

इसके प्रयोग से चंचलता का विलोप होता है।

यह आसन स्वप्नदोष का दुर्दान्त शत्रु है।

इस आसन को करने से अस्थियों में बल का वर्द्धन होता है।

सिद्धासन तथा सिद्धयोनि आसन को करने से जो फल प्राप्त होते हैं, वे सभी इस आसन के द्वारा भी पाये जा सकते हैं।

सावधानियाँ :-

साइटिका, रीढ़ के नीचले भाग के विकारों से पीड़ित साधकों को यह आसन नहीं करना चाहिये।

इस आसन के उपरान्त सुखासन करना चाहिये।



सर्वांगासन

जमीन पर लेट कर सम्पूर्ण शरीर को ऊपर उठाने के कारण इस आसन को सर्वांगासन कहते हैं।

विधि :-

समतल भूमि पर पीठ के बल लेट कर यह आसन किया जाता है। साँस को भीतर खींचिये, फिर धीरे-धीरे साँस छोड़ते हुये पैरों को सीधा रखते हुये ऊपर की उठा दीजिये। पहले कमर तक पैर उठाने हैं, उसके पश्चात् पीठ का जो भाग जमीन पर है, उसे उठा कर दोनों हाथों से कमर पकड़ कर कन्धों से पैरो तक सारे शरीर को सीधा रखें। धड़ एवं पैर ग्रीवा से समकोण बनाते हुये सीधे रहने चाहिये। छाती से ठुड्डी का स्पर्श कीजिये। पैर और अंगुलियों को जहाँ तक ले जा सकते हैं, उतना ऊपर की ओर ले जाइये और शरीर में तनाव लाने का प्रयत्न कीजिये। दृष्टि पैर की अंगुलियों पर जमाइये। सामान्यरूप से श्वास लेते रहना चाहिये। कुछ सेकन्दों तक इस आसन में स्थिर रह कर पुनः धीरे-धीरे अपनी पूर्ववर्ती अवस्था में आना चाहिये। मूल स्थिति में आने के उपरान्त कुछ समय तक लेटे रहना चाहिये।

समय :-

प्रारम्भिक अवस्था में इस आसन का अभ्यास कुछ सेकन्द तक ही करना चाहिये। प्रतिदिन आसन की कालमर्यादा को वृद्धिमान रखना चाहिये।

जिन्हें इस आसन का अभ्यास अच्छी तरह हो गया है, वे पन्द्रह मिनिट तक इस आसन का अभ्यास कर सकते हैं।

लाभ :-

यह आसन चुल्लिकाग्रन्थी को क्रियाशील बनाता है। फलतः रक्तपरिवहन, पाचन, जननेन्द्रिय, स्नायुओं एवं ग्रन्थिसंस्थानों में सन्तुलन लाता है।

इस आसन के कारण शरीर का विकास समुचित होता है।

स्त्रीरोगों के लिये यह आसन अत्यन्त लाभदायक है। इससे मासिक धर्म नहीं आना अथवा अधिक आना जैसे रोग दूर होते हैं।

इस आसन को करने से बवासीर और मधुमेह में लाभ होता है।

इस आसन को करने से वृद्धावस्था रुकती है और दीर्घायु प्राप्त होती है।

मस्तिष्क में समीचीनरूप से रक्तप्रवाह होने के कारण इस आसन के अभ्यासु को अधिक मात्रा में प्राणवायु मिलती है। यही कारण है कि इस आसन का अभ्यास करने वाले साधक का मस्तिष्क पुष्ट एवं स्वस्थ होता है।

इसके अभ्यास से पैर, उदरप्रदेश, मेरुदण्ड और कण्ठप्रदेश मजबूत होता है।

कब्ज, उदरवायु के कारण होने कष्ट, इत्यादि रोगों के लिये यह आसन रामबाण औषधी के समान माना गया है।

इस आसन से दमा, खाँसी एवं हाथीपाँव जैसे रोग दूर हो जाते हैं।

लीवर और प्लीहा के रोग दूर करने के लिये यह आसन अत्युपयोगी है।

इस आसन को करने से स्मरणशक्ति बढ़ती है।

यह आसन स्वप्नदोष को दूर करता है।

मस्तक और नेत्रों के रोग भी इस आसन के कारण दूर होते हैं।

त्रिदोषों का शमन करने के लिये यह आसन उपयोगी है।

इस आसन से वीर्य का ऊर्ध्वारोहण होता है, जिससे मानसिक बल की वृद्धि होती है और मेधाशक्ति का विकास होता है।

इस आसन को करने से बाल सफेद नहीं होते, मुख पर झुर्रियाँ नहीं पड़ती और शरीर की त्वचा पर सिकुड़न नहीं आती।

मुख के मुँहासे और दागों को दूर करने के लिये यह आसन करना चाहिये।

सावधानियाँ :-

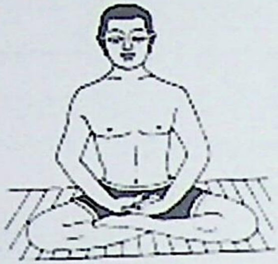
उक्त रक्तचाप, हृदयरोग की बीमारी चुल्लिका ग्रन्थि तथा यकृत की समस्या में इस आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिये।

थाइराइड के अतिविकास वाले, अत्यधिक चरबी बाले साधकों को किसी अनुभवी से परामर्श लेकर ही इस आसन को करना चाहिये।

तिल्ली बढ़ने पर भी इस आसन को नहीं करना चाहिये।

नवागन्तुक साधक को यह आसन करते समय शीघ्रता नहीं करनी चाहिये। आसन करते समय शरीर के साथ कभी भी जबरदस्ती नहीं करनी चाहिये। किसी भी अंग को झुकाते समय अत्यन्त सावधानी रखनी चाहिये।

इस आसन के उपरान्त क्लान्ति के शमनार्थ शवासन करना चाहिये।



सिद्धासन

लौकिक एवं पारलौकिक सिद्धियों की सिद्धि का कारण होने से इस आसन को सिद्धासन कहा जाता है।

विधि :-

इस आसन को किसी समतल भूमि पर करना चाहिये। पहले दाये पैर को मोड़ कर एड़ी को लिंग और गुदा के बीच के कोमल स्थान से सटा दीजिये। तदुपरान्त बाये पैर को मोड़ कर दाये पैर की पिण्डली से सटा दीजिये। हथेलियों को ज्ञानमुद्रा अथवा चिन्मुद्रा में रखना चाहिये। श्वासोच्छ्वास की गति सामान्य होनी चाहिये। इस आसन को करते समय कमर, पीठ, छाती, गर्दन आदि सम्पूर्ण शरीर सीधा रखना चाहिये। दृष्टि न तो अधिक खुली हो न बन्द। नासाग्रदृष्टि हो तो अत्युत्तम है। इस आसन को करते समय गुदा, मुत्रेन्द्रिय एवं पेट को सरलता से अन्दर की ओर खींचने का अभ्यास करना चाहिये। इस आसन का अभ्यास केवल पुरुषों को ही करना चाहिये।

समय :-

इस आसन को दोनों संध्याकाल में किसी एकान्त, शान्त तथा पवित्र स्थान पर करना चाहिये। शान्ति से जितनी देर बैठ सकते हैं, उतनी देर तक इस आसन में बैठना चाहिये। क्रमशः समय बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिये।

लाभ :-

कमर के हिस्से के सभी जोडों की चिकित्सा करने में सिद्धासन बहुत प्रभावशाली माना गया है।

इस आसन को करने से कुल्हों के जोड़, घुटने तथा टखने सम्यक् प्रकार से सक्रिय हो जाते हैं।

इस आसन से शरीर की समस्त नाड़ियों का शुद्धिकरण होता है।

इस आसन को करने से रीढ़ की हड्डी सबल होती है।

ध्यान के लिये यह आसन अत्यन्त उपयोगी है।

इस आसन के अनुप्रयोग से वीर्य की रक्षा होती है।

इस आसन से मूलबन्ध और वज्रोलीमुद्रा स्वतः लग जाती है। परिणामस्वरूप कामशक्ति की तरंगें रीढ़प्रदेश से मस्तिष्क तक पहुँचने लगती है।

समस्त स्नायविक-प्रणाली को शान्त व सामान्य स्थिति में रखने के लिये यह आसन सहयोग प्रदान करता है।

इस आसन के द्वारा मन की एकाग्रता बढ़ती है।

इस आसन को करने से विचारों में पवित्रता आती हैं। फलस्वरूप ऐसे साधक के स्वप्नदोष दूर होते हैं।

यह आसन पाचनशक्ति को बढ़ाता है।

श्वासरोग, हृदयरोग, जीर्णज्वर, अजीर्ण, अतिसार, शुक्रदोष आदि रोगों को दूर करने के लिये यह आसन अत्यन्त लाभदायक है।

मन्दाग्नि, वातविकार, क्षय, दमा, मधुमेह, प्लीहा की वृद्धि, आदि अनेक रोग इस आसन के अभ्यास से स्वयं शमित हो जाते हैं।

काम का नियन्त्रक होने के कारण ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करने में यह आसन सहयोग प्रदान करता है।

मानसिकस्थिरता के लिये इस आसन की उपयोगिता स्वयं सिद्ध है।

इस आसन के द्वारा मस्तिष्क स्थिर होता है। अतः इसके अनुप्रयोग से स्मरणशक्ति का आशातीत विकास होता है।

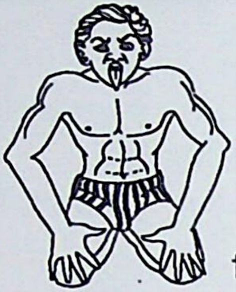
इस आसन से नाड़ीशुद्धि होती है।

कुण्डलिनीशक्ति के जागरण के लिये इस आसन को करना ही चाहिये।

सावधानियाँ :-

इस आसन को करते समय किसी भी अवयव को उठाने में शीघ्रता नहीं करनी चाहिये। साइटिका और रीढ़ के नीचले भाग की गड़बड़ी से पीड़ित व्यक्तियों को यह आसन नहीं करनी चाहिये।

यदि इस आसन को अधिक देर तक करना हो तो नये अभ्यासी को अथवा जिज्ञासुओं को आसन करते समय नितम्बों को गद्दी के सहारे थोड़ा ऊपर उठा दिया जाय तो अधिक लाभप्रद होगा।



सिंहासन

सिंह अपनी प्रकृति को स्वस्थ रखने के लिये अपनी जिह्वा को बाहर निकाल कर लम्बी कर लेता है। यही प्रमुख क्रिया इस आसन के माध्यम से होती है। इसीलिये इसे सिंहासन कहा जाता है।

विधि :-

भूमि पर कम्बल या शाल रख लीजिये। उसी पर वज्रासन से बैठ जाइये। घुटनों को दूर-दूर रखना चाहिये। यदि सम्भव हो तो सूर्य की ओर मुँह करके बैठना चाहिये। दोनों हाथों को घुटनों के तरफ मोड़ लीजिये। भुजाओं के सहारे थोड़ा आगे की ओर झूक जाइये। सिर पीछे की ओर उठाइये। जबड़ों को चौड़ा खोल दे तथा जितना हो सके, जीभ को उतना बाहर निकाल लीजिये। आँखों को भौहों के बीच रखिये। छह से सात सेकन्दपर्यन्त इस आसन में रह कर श्वास को खींचते हुये जीभ को पुनः अन्दर खींच लीजिये। श्वास तथा जीभ को खींचते समय शरीर को क्रमशः ढीला छोड़ दीजिये। पुनः उसी क्रिया को दुहराइये। नाक से श्वास लीजिये। श्वास को धीरे-धीरे छोड़ते हुयेगले से स्पष्ट और स्थिर आवाज् निकालिये।

जीभ को बाहर निकाल कर तथा दाये-बाये घुमा कर भी इस आसन को किया जा सकता है।

समय :-

सामान्य अवस्था में यह आसन दस बार करना चाहिये। किसी रोगविशेष में इस आसन को अधिक समय तक किया जा सकता है। आरम्भिक दिनों में यह आसन पाँच से दस सेकन्दपर्यन्त करना चाहिये। प्रत्येक सप्ताह में दस सेकन्दों का समय बढ़ाना चाहिये। इस प्रकार बढ़ाते-बढ़ाते इस आसन का समय तीन मिनट तक ले जाना चाहिये।

लाभ :-

गले की तकलीफ, आवाज की खराबी तथा टांसिल-सूजन में यह आसन

औषधि का कार्य करता है।

गले, कान, नाक और मुँह की बीमारियों को दूर करने के लिये इस आसन को सर्वश्रेष्ठ माना गया हैं।

तोतलापन दूर करने के लिये इस आसन को करना चाहिये।

यह आसन कण्ठ की नाड़ियों को प्रभावित करता है।

इस आसन को करने से श्वास की दुर्गन्ध दूर होती है।

यह आसन मुख को सुन्दर बनाता है।

इस आसन का अभ्यास स्वरयन्त्र को पुष्ट और सक्रिय करता है।

स्वर में मधुरता लानी हो तो यह आसन प्रतिदिन करना चाहिये।

साइनस, फैरिन्क्स और लैरिन्क्स का व्यायाम इसमें अत्यधिक मात्रा में होने के कारण साइनाइटिस (नासुर), गले और स्वरयन्त्र के प्रदाह को दूर करने में यह आसन अत्यधिक लाभ प्रदान करता है।

इस आसन के समय जिह्वा को बाहर निकाल कर उस पर तनाव दिया जाता है। इस कारण गले के कोमल स्नायुओं पर आरोग्यकारण तनाव आता है। इससे गले की सूजन, स्वर का बिघड़ना आदि रोगों से मुक्ति मिलती है।

इस आसन से खाँसी और जी-मचलना जैसे रोगों का विनाश होता है।

इस आसन में जिस प्रकार की बैठक होती है, उसके कारण से उत्सर्जक इन्द्रियों को चालना मिलती है।

यह आसन युवामहिलाओं को अवश्य करना चाहिये, क्योंकि इस आसन के द्वारा अनेक प्रकार के स्त्रीरोग दूर होते हैं। इतना ही नहीं, उनके अंगों का विकास सम्यक् रूप से होता है।

यह आसन जठराग्नि को प्रदीप्त करता है।

सावधानियाँ :-

यदि आसन करते समय शरीर के किसी अंग में पीड़ा होती हो तो आसन को करना छोड़ देना चाहिये।

यदि जीभ को बाहर निकालने में कष्ट हो रहा हो तो अधिक देर तक इस आसन को नहीं करना चाहिये।

आसन करते समय श्वास नाक से ही लेनी चाहिये।

श्वास को छोड़ने में शीघ्रता नहीं करनी चाहिये।

इस आसन के बाद सुखासन करना लाभप्रद है।



सुप्त वज्रासन

यह आसन वज्रासन के अवान्तर प्रकार के रूप में ही है। वज्रासन की दशा में शयनमुद्रा यह आसन किया जाता है। अतः इसे सुप्तवज्रासन कहते हैं।

यह आसन अर्द्ध-कच्छपासन का विलोमरूप है। अर्द्ध-कच्छपासन में घुटने पेट से सटा कर हाथ ऊपर की ओर जोड़ने होते हैं। इस आसन में पेट के बल पर लेटा जाता है।

विधि :-

सर्वप्रथम वज्रासन से बैठ जाइये। पैरों को नितम्बों से थोड़ा अलग करके भुजाओं ओर कुहनियों के सहयोग लेकर पीछे की ओर धीरे-धीरे तब तक झुकते जाइये, जब तक कि मस्तक जमीन से स्पर्श न करे। इसी प्रकार पीठ और कन्धों का स्पर्श भी भूमि पर होना चाहिये। कमर पूर्णरूप से धनुषाकार रहनी चाहिये। घुटने भूमि पर ही होने चाहिये। हाथों को मस्तक के नीचे जमा दीजिये। आँखें बन्द करके शरीर को ढ़ीला छोड़ दीजिये। श्वास गहरी होनी चाहिये। तनाव से रहित रहने प्रयत्न कीजिये।

कुछ योगविदों का मत है कि एड़ियों को अलग करके चूतड़ को जमीन पर रख कर बैठना चाहिये। तदुपरान्त हाथों से एक-दूसरे भुजदण्ड को पकड़ कर उन पर सिर रख कर पीठ के बल पर लेटना चाहिये। यह विधि अपेक्षाकृत सरल है।

समय :-

शारीरिक लाभ के लिये इस आसन का अभ्यास एक से दो मिनट तक करना चाहिये। अध्यात्मिक लाभ के लिये इस आसन को करना हो तो अधिक समय तक भी किया जा सकता है।

लाभ :-

इस आसन को करने से कमर और पीठ का दर्द दूर होता है।

इस आसन को गले के रोगों को दूर करने वाला माना गया है।

यह आसन पैरों को सबल बनाता है।

इस आसन को करने से श्वास और दमे की व्याधि दूर होती है।

उदररोग का निष्कासन करने के लिये यह आसन करना चाहिये।

यह आसन पाचनशक्ति को बढ़ाता है।

इस आसन के अनुप्रयोग से पेट हल्का होता है।

यह आसन नेत्रज्योति का विकासक है।

इस आसन के कारण छाती चौड़ी हो जाती है।

नाभि अपने मूल स्थान से हट गयी हो तो इस आसन से वह ठीक होती है।

आमाशय के रोगों के लिये यह आसन बहुत उपयोगी है, क्योंकि यह आसन आँतों को शक्ति के साथ फैलाता व संकुचित करता है।

सम्पूर्ण शरीर को मस्तिष्क से जोड़ने वाले रीढ़ के मुख्य स्नायुओं में दबाव को सामान्य रखने के लिये यह आसन बहुत अच्छा है।

शीर्षस्थग्रन्थि, कण्ठस्थग्रन्थि, मूत्रपिण्डस्थग्रन्थि, ऊर्ध्वपिण्डस्थग्रन्थि, पुरुषार्थग्रन्थि आदि अन्तःस्रावी ग्रन्थियों का विशोधक होने से यह आसन भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति का कारक है।

धातुक्षय, स्वप्नदोष, पक्षाघात, पथरी, बहरापन, तोतलापन, आँखों की दुर्बलता, गले का टॉन्सिल, श्वासनलिका की सूजन, क्षय और दमा जैसे रोगों को दूर करने के लिये इस आसन को करना चाहिये।

यह आसन धारणाशक्ति में आश्चर्यकारक वृद्धि करता है।

वज्रासन में प्राप्त होने वाले समस्त लाभ इस आसन से भी प्राप्त होते हैं।

थाइराइड की ग्रन्थि का कार्य सुचारुरूप से होने के कारण इस आसन के द्वारा शारीरिक स्वास्थ्य के साथ मानसिक स्वास्थ्य में भी सुधार होता है।

कटिशूल, भृति और पार्श्वशूल की स्थिति में भी इस आसन के द्वारा लाभ उठाया जा सकता है।

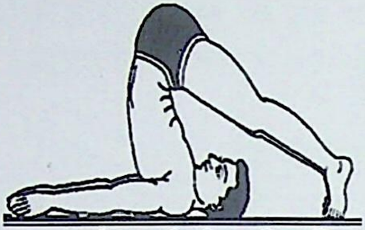
सावधानियाँ :-

गर्भवती महिलाओं को यह आसन नहीं करना चाहिये।

इस आसन को करते समय मेरुदण्ड पृथ्वी पर समतल होना चाहिये।

घुटनों को हठपूर्वक भूमि का स्पर्श कराने के लिये जंघाओं और घुटनों की मांसपेशियों व सन्धि बन्धनों में अनावश्यक तनाव उत्पन्न नहीं करना चाहिये।

इस आसन के उपरान्त शवासन करना चाहिये।



हलासन

इस आसन को करने से शरीर की आकृति हल (कृषिविषयक एक यन्त्र) के समान होती है। इसीलिये इस आसन को हलासन कहा जाता है।

विधि :-

पीठ के बल पर सीधे लेट कर यह आसन किया जाता है। हाथ शरीर से चिपके हुये होने चाहिये तथा जंघायें व पैर आपस में सटे हुये होने चाहिये। हथेलियों पर जोर देते हुये पैरों को धीरे-धीरे ऊपर उठाइये। जब पैर बिलकुल ऊपर आ जावे तो कुछ क्षण रुक कर उन्हें सिर की ओर तब तक झुकाते चले जाइये, जब तक कि पैर के पंजे धरती पर आकर टिक न जाये।

तदुपरान्त हाथों को धीरे-धीरे सिर की ओर ले जाइये और पैरों के पंजों को पकड़ लीजिये। पंजों को पकड़ कर अपनी ओर खींचिये, जिससे साधक ठोड़ी गले के गड्ढे में आकर लग जाये। विलोमक्रम से आसन का समापन करना चाहिये।

समय :-

प्रारम्भिक दिनों में यह आसन लगभग बीस सेकन्द तक करना चाहिये। अभ्यास की दशा में एक/एक मिनट के अन्तर से तीन बार किया जा सकता है।

लाभ :-

इस आसन का नियमित अभ्यास करने वाले साधकों में उत्साहशक्ति, कार्यशक्ति, रोगनिवारणशक्ति आदि समस्त शक्तियों का विकास होता है।

इस आसन को करने से रुक-रुक कर लघुशंका आना, मधुमेह का बढ़ना आदि मूत्राशयविषयक रोगों से आराम मिलता है।

कष्टार्त्तव, कमरदर्द, बेचैनी आदि स्त्रीरोगों का विनाश करना हो तो स्त्रियों को इस आसन का नियमितरूप से प्रयोग करना चाहिये।

उदररोग, पीठ से सम्बन्धित रोग अथवा कण्ठ से सम्बन्धित रोगों को दूर करने के लिये इस आसन को प्रतिदिन करना चाहिये।

शरीर के बेडौल मोटापे को घटाने के लिये यह आसन उपयुक्त है।

कमर को पतली करने के लिये और फूर्तिलापन बढ़ाने के लिये इस आसन को किया जाना चाहिये।

इस आसन को करने वाले साधक का क्रोध शमन होता है।

बवासीर, अर्श, दमा, कफ, रक्तदोष आदि रोगों की पीड़ा को कम करने के लिये इस आसन का अभ्यास अपेक्षित है।

यह आसन नाड़ीतन्त्र को सबल बनाता है।

इस आसन के अनुप्रयोग से मस्तिष्क की ओर रक्तप्रवाह की मात्रा बढ़ जाती है, जिससे धारणाशक्ति तथा जीवनीशक्ति की वृद्धि होती है और क्रोधादि मानसिक विकारों का शमन होने में सहयोग मिलता है।

इस आसन को करने वाला किसी युवक के समान बल और उत्साह को कायम रख सकता है।

शारीरिक शक्ति के विकास में इस आसन का सहयोग प्राप्त होता है, क्योंकि इस आसन से अन्तर्वर्ती अवयवों की समुचित मालिश होती है।

निरन्तर मस्तिष्कशूल से पीड़ित रहने वाले रोगियों को यह आसन अवश्य करना चाहिये।

इस आसन के द्वारा मेरुदण्ड सबल होता है। फलस्वरूप कमरविषयक कोई भी व्याधि शरीर पर आक्रमण नहीं कर सकती।

इस आसन के कारण से गले की ग्रन्थियाँ और पेशियाँ सुचारुरूप से कार्य करने लगती है। फलतः कण्ठरोग छूमन्तर हो जाते हैं।

मधुमेह और हार्निया के रोगियों को यह आसन करना ही चाहिये।

मूत्राशय, शुक्राशय गर्भाशय की शुद्धि के लिये यह आसन किया जाता है।

सावधानियाँ :-

वृद्ध, दुर्बल, उच्च रक्तचाप से पीड़ित अथवा साइटिका से सहित जीवों को इस आसन का अभ्यास नहीं करना चाहिये।

जब तक पीठ की माँसपेशियाँ लचीली नहीं हो जाती, तब तक इसका पूर्ण अभ्यास नहीं करना चाहिये। सहजतया पैर जितने पीछे जा सकते हैं, उतने ही ले जाने चाहिये।

इस आसन का समापन करने के उपरान्त आसन के कारण शरीर में आयी हुयी थकावट को दूर करने के लिये शवासन करना चाहिये।

आगम में आसनों का उल्लेख

--पलियंक-कुक्कुटासण-गोदोहद्धपलियंक-वीरासण-मदयसयण-मयरमुह-हत्थिसोंडादीहि जं जीवदमणं सो कायकिलेसो।

(धवला = १३/५८)

अर्थात् :- पर्यंकासन, कुक्कुटासन, गोदुहासन, अर्द्धपर्यंकासन, वीरासन, मृतकासन, मकरमुखासन, हस्तिसुण्डासन आदि आसनों के द्वारा जीव का दमन किया जाता है, वह कायक्लेश नामक तप है।

यहाँ किसी को यह प्रश्न हो सकता है कि आसन शारीरिक क्रिया है। मोक्षमार्ग में इसका महत्व क्या है?

यह तो सभी के विदित है कि जैनधर्म में सम्पूर्ण क्रियाओं का उद्देश्य मोक्ष की सिद्धि है। जो-जो कार्य मोक्षमार्ग में सहयोगी बनते हैं, उनको जिनागम ने स्वीकार किया है। आसन भी मोक्षमार्ग में सहयोगी होने से उनका स्वीकार आगमज्ञों ने किया है।

कायिक चंचलता को काययोग कहते हैं। काययोग आस्रव का प्रत्यय है। आस्रव संसार का कारण है। आस्रव का निरोध करने को गुप्ति कहते हैं। कायिक चंचलता का निरोध करने से कायगुप्ति का लाभ होता है। कायगुप्ति श्रमणधर्म का एक अंग है, जो संवर का प्रमुख कारण है।

दिगम्बर जैनाचार्यों ने तप को संवर और निर्जरा का कारण माना है। **तपसा निर्जरा च**-यह सूत्र इसका स्पष्ट द्योतक है। बारह प्रकार के तप में कायक्लेश नामक तप है। विविध प्रकार के आसनों का समालम्ब लेने से कायक्लेश तप की सिद्धि होती है। इसका अर्थ हुआ कि आसन भी संवर और निर्जरा के कारण हैं।

विशेष ज्ञातव्य यह है कि ध्यान को सर्वोत्तम तप माना गया है। ध्यान तप के लिये सर्वप्रथम कायिक स्थिरता की आवश्यकता होती है। कायिक स्थिरता का लाभ आसनों के माध्यम से होता है। इसका अर्थ यह हुआ कि आसन ध्यान का और ध्यान मोक्ष का कारण होने से आसन भी मोक्ष का कारण है। अतः जैनाचार्यों ने आसनों को स्वीकार किया है।

लेखक का परिचय

– लेखिका – पूज्या गणिनी–आर्यिका श्री सुविधिमती माताजी

भारत देश की इस पावन वसुन्धरा पर श्रमण–संस्कृति की अजस्र धारा को प्रवाहित कर अनन्त भव्यात्माओं का विकास करने वाले अनेक दिगम्बर तपस्वी सन्त हुये हैं। उस सन्त–परम्परा में रवि के समान तेजस्वी और शशि के समान कान्तिशाली सन्तप्रवर हैं, मेरे आराध्य गुरुदेव परम पूज्य आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज। ये महान सन्त हैं। सरलता, गुरुभक्ति, आगमनिष्ठता, गुणानुराग, तार्किकता, निस्पृहता, श्रद्धा की अखण्डता, जिज्ञासा की प्रखरता, निर्भयता, निष्पक्षता, वात्सल्यता, लघुता, विनयता आदि अनेकानेक गुणरत्नों से युक्त सागर का नाम ही सुविधिसागर है। ऐसे अचिन्त्य–प्रज्ञाशक्ति के धारक, गुरुदेव का परिचय लिख पाना सहज नहीं है।

महाराष्ट्र प्रान्त के औरंगाबाद नामक शहर में धर्मरत्न श्री इन्दरचन्द जी पापड़ीवाल (वर्तमान में संघस्थ मुनिश्री सुनम्रसागर जी महाराज) का घर–आँगन सब खिल उठा। सौभाग्यवती माता कंचनदेवी (वर्तमान में संघस्थ क्षुल्लिकाश्री सुध्येयमती माताजी) का प्रथम मातृत्व धन्य हो गया कि उनकी कोख से १९–३–१९७१ को ऐसे बालक ने जन्म लिया, जो विश्व के कल्याण को साधने वाला महान साधक बन गया।

नवजात बालक का नाम क्या रखा जाये? परिवार में इस विषय पर बहुत ऊहापोह हुये। सभी ने मिल कर पहले **यशवन्तकुमार** यह नाम रखा। दादी माँ (समाधिस्थ आर्यिकाश्री सुवर्णमती माताजी) इस नाम से सहमत नहीं हुयी। उन्होंने बालक को **मनोजकुमार** कहना प्रारम्भ किया। परिवार के कुछ सदस्यों को यह नाम अच्छा नहीं लगा। अतः उन्होंने बालक को **जयकुमार** यह संज्ञा दी। माता का प्यार बालक को **जयेश** कह कर पुकारने लगा। भाई, बहन और मित्रों के मध्य में यह नाम भी लम्बा था। अतः उन्होंने तो हमेशा **जय** कह कर ही पुकारा। इस प्रकार उस बालक ने बचपन में ही अनेक नामों को सुशोभित किया। जिस प्रकार दीपक स्वयं प्रकाशित होकर दूसरों को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार जयकुमार भी स्वयं अपने जीवन को आदर्शमयी बना कर दूसरों को आदर्श की शिक्षा देने लगा। **कहो मत, करके दिखाओ**–यह नीति जयकुमार के जीवन का आदर्श थी।

संघर्ष उत्कर्ष का बीज है–यह उक्ति चरित्रनायक के जीवन पर सार्थक होती दिखायी देती है। जयकुमार को बचपन से ही नासूर नामक अक्षिरोग था। देढ़ वर्ष की आयु पर्यन्त ही उनकी तीन बार शल्यचिकित्सा हो चुकी थी। पहली शल्यचिकित्सा के समय तो जयकुमार मात्र तीन दिन के थे। पन्द्रह वर्ष की आयु पर्यन्त छह बार नेत्रों की शल्यचिकित्सा हो चुकी थी।

एक बार चिकित्सकों ने माता कंचनबाई को सलाह दी कि बालक बंहुत कमजोर और नेत्रशक्ति से हीन है। अतः इसे रोज एक/दो अण्डे खिलाये जाये। इससे इसका जीवन बच

जायेगा। अन्यथा, यह बालक अकालमरण को प्राप्त कर सकता है। माँ ने ओजपूर्ण शब्दों में कहा कि मुर्गी के होने वाले बच्चे को मार कर मैं अपने बच्चे को जीवित रखना नहीं चाहती। मेरे बेटे के भाग्य में अल्पायु और मेरे भाग्य में पुत्रसुख का अभाव ही लिखा हो तो विधि के इस लेख को कौन मिटा सकता है? यदि मेरा बेटा मर जाता है तो मैं दो दिन रो लूँगी, किन्तु मुर्गी के बेटे को मार कर मैं प्रसन्नता प्राप्त नहीं करना चाहती।

पाँच वर्ष तक भी जयकुमार ठीक से बैठ नहीं पाया। तब चिन्तित माता-पिता ने चिकित्सकों की शरण ग्रहण की। चिकित्सकों ने बताया कि बालक की रीढ़ की हड्डी कमजोर होने से बालक बैठ नहीं पा रहा है। जीवन भर सम्भवतः यह ठीक से नहीं बैठ पायेगा। आज भी आचार्यश्री की आँखें और कमर-ये दोनों अंग कमजोर हैं, किन्तु उनके आत्मबल की कितनी प्रशंसा की जाये कि वे सोलह-सोलह घण्टों तक अध्ययन करते हुये पाये जाते हैं। उनकी सहिष्णुता जगत् को यह शिक्षा प्रदान करती है कि लगन सच्ची हो तो प्रतिकूलतायें भी अनुकूलताओं में परिवर्तित हो जाया करती हैं तथा किसी भी क्षेत्र में सफलता पाने के लिये शारीरिक बल और बाह्य व्यवस्थाओं से अधिक आत्मबल आवश्यक होता है।

बाल्यकाल से ही जयकुमार की बुद्धि अतिशय तीक्ष्ण थी। पाठ्यविषय कितना ही कठिन क्यों न हो, उनके बुद्धिवैभव के कारण वह सरल हो जाया करता था। एक बार याद किया हुआ प्रकरण उन्हें सदा के लिये याद रह जाता है। परम पूज्य युगनायक, आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज उनके मस्तिष्क को कम्प्युटर की उपमा दिया करते थे। वाक्चातुर्य तो उन्हें मिला हुआ सृष्टि का अनोखा उपहार ही था। **मूर्ति लहान पण कीर्ति महान** यह उक्ति उन पर अक्षरशः घटित हुआ करती थी। विद्याध्ययन की लगन तथा प्रत्युत्पन्नमति के कारण वे अपने इष्ट-मित्रों में सर्वप्रिय थे।

साधु-सन्तों की वैयावृत्ति करना तथा दीन-अनाथों की सेवा-सुश्रुषा करना उनका स्वाभाविक गुण था। धार्मिक संस्कार तो जैसे उनमें पूर्वभव के ही अनुगामी थे। निरन्तर गृहत्याग करने के लिये आपका मन छटपटाया करता था। यही कारण है कि आपका लौकिक अध्ययन अधिक नहीं हो पाया।

छठीं, सातवीं तथा आठवीं कक्षा की पढ़ाई के लिये आपको बाहुबली (कुम्भोज) के बाल-ब्रह्मचर्याश्रम में रखा गया। उस समय श्रीक्षेत्र पर परम पूज्य आचार्यश्री समन्तभद्र जी महाराज विराजमान थे। वे आगम के तलस्पर्शी विद्वान तथा ज्येष्ठ सन्त थे। उनकी वन्दना करने के लिये अथवा उनसे शिक्षा पाने के लिये भी साधुओं का आगमन इस क्षेत्र पर हुआ करता था। अतः माता-पिता से दूर रहने का आपको कभी दुःख नहीं हुआ। आप तो गुरु-चरणों में रह कर अत्यानन्द में थे। आचार्यश्री का स्नेह आपको पुनः पुनः उनके चरणों में ले जाया करता था। आप भी गुरुदेव की सेवा कर पुण्यार्जन कर रहे थे। विद्यालय से अवकाश पाने के उपरान्त आप अपना अधिकांश समय गुरुचरणों में ही व्यतीत किया करते थे। गुरुसंगति आपकी पात्रता के विकास में कारण बनी। वही पात्रता का विकास आपकी संयमयात्रा का मुख्य कारण बना।

एक दिन विद्यालय में जयकुमार का ओजपूर्ण भाषण हुआ। उस कार्यक्रम में आचार्यश्री

समन्तभद्र जी महाराज का मंगल सानिध्य प्राप्त था। आचार्यश्री जयकुमार के भाषण को सुन कर बहुत प्रभावित हुये। उन्हें उस बालक में धर्म का भावी कर्णधार दिखाई देने लगा।

सायंकाल के समय जब जयकुमार गुरुवन्दना के लिये पहुँचे तो गुरुदेव ने कहा-आप होनहार बालक हैं। आप यदि अपने आपको धर्म को सौंप देते हो तो आपका तो भला होगा ही, साथ में अनेक भव्य जीवों का भी भला होगा। गुरुमुख से इतनी बड़ी बात सुन कर जयकुमार अभिभूत हो उठे। एक बार मन से मन के तार मिलने के बाद कौन बुद्धिमान विलम्ब करेगा? जिसे गुरुकृपा मिल जाती है, उसे तो मोक्षमार्ग ही क्या? साक्षात् मोक्ष ही मिल जाता है। जयकुमार शीघ्र ही श्रीफल लेकर आया और गुरुचरणों में समर्पित कर बोला-हे गुरुदेव! मैं आपके श्रीचरणों में नतमस्तक हूँ। मुझ पर अनुग्रह करते हुए आप मुझे आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत प्रदान कीजिये। गुरुदेव ने कहा-बेटा! अभी तुम बहुत छोटे हो। जयकुमार ने कहा-गुरुदेव! आप जैसे महान अनुभवी के श्रीचरणों का आश्रय पाकर मैं अपने आप ही बड़ा बन जाऊँगा। गुरुदेव को व्रत देने में कुछ संकोच-सा हो रहा था। अतः उन्होंने टालने की दृष्टि से कहा कि तुम्हारे माता-पिता यहाँ नहीं हैं। तुम उन्हें आने दो। उनके आने पर व्रत-विषयक चर्चा करेंगे। किन्तु जयकुमार कहाँ मानने वाला था। उसने हाथ जोड़ कर कहा-गुरुदेव ! मेरी तो माता भी आप हैं और पिता भी। आपके अतिरिक्त मेरा इस दुनियाँ में कोई नहीं है। अतः मेरा उद्धार करने में विलम्ब मत कीजिये और मुझे यह महानतम व्रत प्रदान कर मुझ पर आपका आशीर्वाद बनाये रखिये।

ऐसे अनूठे शिष्य को प्राप्त करके कौन सद्गुरु आनन्दित नहीं होगा? फिर भी, आचार्यश्री अचानक इतने बड़े व्रत को देने तैयार नहीं हुये। उन्होंने समझाया कि अभी आप केवल आयु के पच्चीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य से रहने का नियम कीजिये। उचित समय आने पर आगे की चर्चा करेंगे।

जयकुमार का मन नहीं मान रहा था, किन्तु गुरु आज्ञा अनुलंघ्यनीय होती है। यही सोच कर उसने आयु के पच्चीस वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचारी रहने का नियम कर लिया। उसी दिन उसने कन्दमूलत्याग, रात्रिभोजनत्याग, शूद्रजलत्याग आदि अनेक प्रकार के नियम ले लिये। उसी दिन जयकुमार ने आजीवन जूते-चप्पल आदि का त्याग कर दिया। उस समय जयकुमार की आयु मात्र दस वर्ष की थी। गृहीत नियमों का परिपालन करते समय उनमें कभी प्रमाद नहीं आया।

आपने दसवीं की परीक्षा दी। परीक्षा के दूसरे ही दिन आपने गुरुचरणों में पहुँचने का मानस बनाया। आपने माता-पिता से अनुमति चाही। २८-४-१९८६ को आपने प्रातः पाँच बजे घर छोड़ा और गुरु-चरणों का वरण किया। उस समय आपकी आयु पन्द्रह वर्ष एक माह और नौ दिनों की थी। अल्पायु में इस प्रकार का अद्भुत साहस प्रशंसनीय है।

जयकुमार ने अक्षयतृतीया (ईसवी सन् १९८६) के पावन अवसर पर नेरी में (जलगाँव) आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण किया। गुरुदेव ने उनका नाम ब्रह्मचारी जैनेन्द्रकुमार रखा। उस दिन से आपने धोती-दुपट्टा इन दो वस्त्रों के अतिरिक्त अन्य वस्त्रों का भी त्याग कर दिया। धोतियों की संख्या भी परिमित कर केवल तीन ही रखी। आजीवन के लिये संकल्पपूर्वक घर का परित्याग कर दिया। आषाढ़ शुक्ला अष्टमी के दिन आपने

अतिशय क्षेत्र कचनेर (औरंगाबाद) में सातवीं प्रतिमा का व्रत भी ग्रहण कर लिया। अस्वस्थ अवस्था में सायंकाल में जल की छूट रख कर आपने शेष काल में एकाशन का नियम भी लिया। दिनांक १०-३-१९८७ को आपने गुरुदेव से निवेदन किया कि आपका दीक्षादिवस दिनांक १३-३-१९८७ को आ रहा है। उसी दिन आप मुझे जिनदीक्षा दीजिये। गुरुदेव ने कहा कि मैं क्षुल्लक दीक्षा दे सकता हूँ। शिऊर नगर में दिनांक १३ मार्च १९८७ को जयकुमार क्षुल्लकश्री रवीन्द्रसागर जी महाराज बन गये।

क्षुल्लक अवस्था में आपका वर्षायोग न्यायडोंगरी (नाशिक) में हुआ था। आपकी चारित्रनिष्ठा से प्रभावित होकर गुरुदेव ने २१-१०-१९८७ को आपको ऐलक दीक्षा प्रदान की। दीक्षा के उपरान्त आपका नाम ऐलकश्री रूपेन्द्रसागर जी महाराज रखा गया। आप गुरुचरणों से निकल कर अपने दादागुरु परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के श्रीचरणों में पहुँचे। संघ के साधुओं की वैयावृत्ति करना, ध्यान-अध्ययन में रत रहने का प्रयत्न करना आदि वृत्ति के कारण ऐलक जी ने संघ का मन मोह लिया। वैशाख शुक्ला सप्तमी (११ मई १९८९) के पावन अवसर पर प्रातःकालीन शुभ बेला में ऐलक जी की मुनिदीक्षा सम्पन्न हुयी। नवदीक्षित मुनि को गुरुदेव ने **सुविधिसागर** नाम प्रदान किया।

दीक्षा के उपरान्त आपकी ज्ञानपिपासा अत्यधिक तीव्र हो गयी। सागवाड़ा में हुये पहले वर्षायोग में ही आपने गुरु के आदेश से ज्योतिष में कुण्डली का अध्ययन किया तथा स्वर-ज्योतिष पढ़ा। उस वर्षायोग में गुरुदेव ने आपको आयुर्वेदशास्त्र और मन्त्रशास्त्र के अनेक रहस्यों से परिचित कराया। गुरुचरणों में बैठ कर अभीक्ष्णज्ञानोपयोगी बन कर आप चारों अनुयोगों का अध्ययन करते थे। वर्षायोग के उपरान्त आपने गुरु के सानिध्य को छोड़ कर ज्ञान की प्राप्ति के साधन जुटाने प्रारम्भ किये। इसके फल से आप शीघ्र ही संस्कृत और प्राकृत भाषा के अध्येता बन गये। आपने अपने बल पर आगम, अध्यात्म, न्याय और आचारशास्त्रों का अध्ययन किया। विचारों की परिशुद्धि के लिये आप पुराणशास्त्रों का स्वाध्याय करते थे।

आप चारों ही अनुयोगों में पारंगत हैं। आपने लौकिक विषयों का भी भली-भाँति अध्ययन किया है। छन्द, ज्योतिष, आयुर्वेद, मन्त्र, योगचिकित्सा, चुम्बकचिकित्सा, एक्युप्रेशरचिकित्सा, एक्युपंचरचिकित्सा, मालिशचिकित्सा, रेकी आदि का भी आपने विधिवत् अध्ययन किया है। अजैन ग्रन्थों का अध्ययन भी आपने अत्यन्त लगन से किया है। चारों वेद, अठारह पुराण, कुछ उपपुराण, एक सौ आठ उपनिषद, बीस स्मृतियों का अध्ययन कर आपने वैदिक ग्रन्थों का ज्ञान प्राप्त किया। गीता की सात संस्कृत टीकाओं का अध्ययन आपने किया है। कुराण शरीफ और कुराण हदीस भी आपने पढ़ा।

अन्य धर्मों के प्रमुख ग्रन्थ भी आपने पढ़े। इस प्रकार अध्ययन के क्षेत्र में आपने बहुत उन्नति की। आप तुलनात्मक अध्ययन के पक्षधर हैं। किसी मत की आलोचना करने की अपेक्षा आप उसे समझने में अधिक रुचि रखते हैं। आपका मानना है कि जैनाचार्यों ने अपने अनुभव के बल पर जिनेन्द्रवाणी का जो लिपिकरण किया है, वह पूर्णरूप से यथार्थ है। समयानुसार प्रतिपादन करने की शैली में परिवर्तन हो जाये तो जैनधर्म विश्वधर्म बन कर वैश्विक समस्याओं का निराकरण करने में सहयोगी बन सकता है।

जिनवाणी की सेवा करने वाले साधुओं में आपका नाम शीर्षस्थ है। श्रावकों को आप स्वाध्याय करने की प्रेरणा देते हैं। समाज को प्रकाशक के द्वारा निर्द्धारित किये गये मूल्य से आधे मूल्य में ग्रन्थ उपलब्ध हो-ऐसे प्रयत्न आपने अनेक स्थानों पर किये। आप समस्त श्रावकों को एक समान मानते हैं। अमीर-गरीब, प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध आदि भेद आपके चरणों में नहीं पाया जाता। यही कारण है कि जो एक बार आपके चरणों में जुड़ जाता है, वह आपका होकर रहता है। जिनवाणी की सेवा आपका मूल ध्येय है।

यह सब सच होते हुए भी आप अपने आवश्यक कर्त्तव्यों के परिपालन में भी उतने ही नियमबद्ध हैं। आपका आहार शुद्ध और सात्विक है। यही कारण है कि आपको औषधियों के सेवन करने की आवश्यकता नहीं पड़ती। शिष्यों को भी आप यही समझाते हैं कि भ्रमरवृत्ति से आहार करो तो कभी कष्ट नहीं होगा। भोजनसंयम को आप सकलसंयम का मूलस्तम्भ मानते हैं। गुरुदेव ने आपकी पात्रता को विलोक कर १९९७ में ही आपके **आचार्यपद** की घोषणा कर दी। गुरुदेव का आदेश **रत्नत्रय निधि द्वार** नामक ग्रन्थ में प्रकाशित भी हो गया, किन्तु आपने उस पद का कभी प्रयोग नहीं किया।

दिनांक २०-६-२००४ का वह शुभ दिन भी आया। नरवाली (राजस्थान) में परम पूज्य सिद्धान्त-चक्रवर्ती, आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज ने अपने सुयोग्य शिष्य पर आचार्यपद के संस्कार किये। यह महानतम आश्चर्य था कि उस समय आचार्यश्री एक पाटे पर विराजमान थे और आचार्यपद को ग्रहण करने वाला शिष्य सिंहासन पर आरूढ़ था। मन्त्रसंस्कार के मध्य जब पैरों में चन्दन के द्वारा तिलक निकालने का अवसर आया तब गुरुदेव ने स्वयं ही अपने शिष्य के पैरों पर तिलक लगाया। स्वयं ने छत्तीस मूलगुणों के संस्कार किये। प्रतिष्ठाचार्यश्री महावीर जी जैन (गिंगला वाले), स्थानीय प्रतिष्ठाचार्यश्री कारुलाल जी जैन तथा संघसंचालिका मैनाबाई ने सिंहासनशुद्धि, पादपूजन आदि सम्पूर्ण संस्कार किये। प्रवचन में आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज ने एक महत्त्वपूर्ण रहस्य को उद्घाटित किया कि **हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालक पद पर नियुक्त करते हैं।** अर्थात् गुरुदेव ने उस दिन केवल आचार्यपद ही नहीं दिया था, अपितु उत्तराधिकारीत्व भी उद्घोषित किया था।

आचार्यश्री का वह प्रवचन आचार्यश्री के आशीर्वाद से प्रकाशित होने वाली **अंकलीकर वाणी** (जुलाई २००४) नामक मासिक पत्रिका में यथावत् प्रकाशित हुआ है। उसी का प्रकाशन **अक्षय-ज्योति** के आचार्यपद विशेषांक (अक्तुबर, २००४) में हुआ है। आपने २००४ का वर्षायोग ओबरी (राजस्थान) में किया तथा वर्षायोग के पश्चात् आप पुनः गुरुदेव के पास खमेरा पहुँचे।

आपने गुरुदेव से निवेदन किया कि प्रायश्चित्तग्रन्थ रहस्यग्रन्थ है। इसका अध्ययन गुरुमुख से हो तो अधिक उचित है। अतः आप मुझे इस ग्रन्थ का अध्ययन करा दीजिये। अपने उत्तराधिकारी को प्रायश्चित्तशास्त्र में पारंगत करने के लिये स्वयं गुरुदेव ने उस शास्त्र का अध्ययन कराया। इस अध्ययन में परम पूज्य आचार्यश्री चन्द्रसागर जी महाराज आपके सहपाठी थे।

ईसवी सन् २००७ में आचार्यश्री का वर्षायोग मध्यप्रदेश की सांस्कृतिक भूमि मन्दसौर नगरी में हुआ। एक दिन राजीव गाँधी शासकीय महाविद्यालय में कालिदास समारोह का

आयोजन किया गया था। उस कार्यक्रम में आपको भी आमन्त्रित किया गया था। इस कार्यक्रम का आयोजन महाविद्यालय के अतिरिक्त कालिदास अकादमी-उज्जैन तथा मध्यप्रदेश सांस्कृतिक संरक्षक संघ-भोपाल ने किया था। चर्चा का विषय था-**मालवांचल और कवि कालिदास।** कार्यक्रम के अन्त में आपका मांगलिक प्रवचन हुआ। आपने कालिदास के दूतकाव्य पर आधारित जैन दूतकाव्य ग्रन्थों का परिचय प्रस्तुत किया।

प्रवचन के उपरान्त तीनों संस्थाओं के संयुक्त तत्त्वावधान में आपको **विद्या-वाचस्पति** यह अलंकरण प्रदान किया गया। मन्दसौर के वर्षायोग में ही आपने **समग्र जैन ग्रन्थकोश** जैसे संगणक कोश की महानतम रचना की। जैन ग्रन्थों की सुरक्षा के लिये किया गया यह अनुपम उद्यम है। सन् २००९ का वर्षायोग मदनगंज-किशनगढ़ (राजस्थान) में सम्पन्न हुआ। गुरुदेव के आदेश को प्राप्त कर आपने वर्षायोग के तत्काल बाद वहाँ से विहार किया। विशाल संघ के साथ मात्र ढ़ाई माह में आपने चौदह सौ किलोमीटर का विहार पूर्ण किया। दिनांक १८-१-२०१० को प्रातःकालीन बेला में आप गुरुचरणों में पहुँचे। उस दिन संघ व समाज ने आपका जो भव्य स्वागत किया, वह चिरस्मरणीय है।

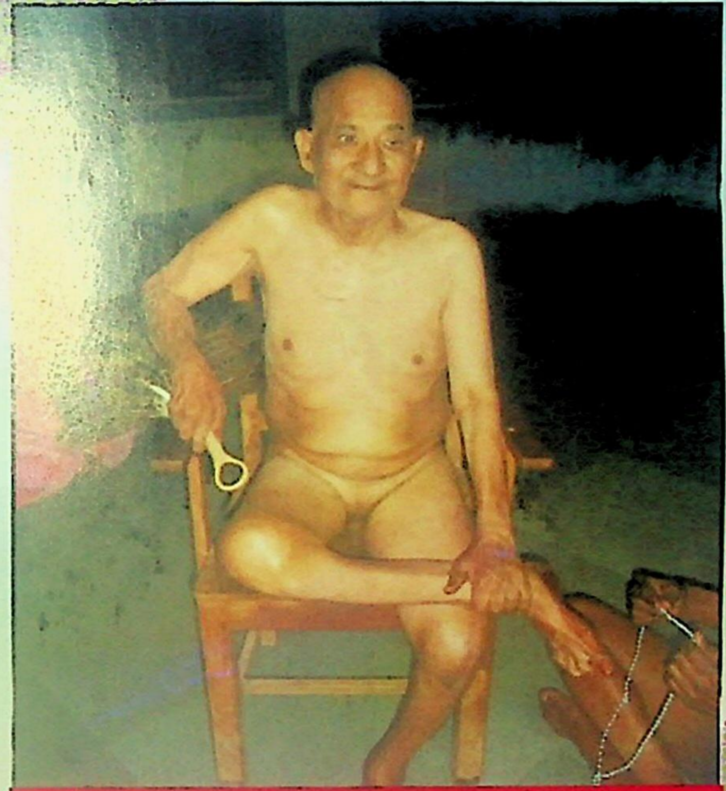
दिनांक २४-१२-२०१० को कोल्हापुर में परम पूज्य आगमकोविद, आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज का प्रातः कालीन बेला में (ब्रह्ममुहूर्त) में समाधिमरण हुआ। २००४ में गुरु महाराज के द्वारा नरवाली में की गयी उद्घोषणा के अनुसार उस दिन से आप उनके पट्टाधीश बन गये। पट्टाचार्यपद की अनुमोदना परम पूज्य स्याद्वादकेसरी, गणधराचार्यश्री कुन्थुसागर जी महाराज तथा परम्परा के लगभग पच्चीस आचार्यों ने की। आपने गुरुदेव की निषेधिका पर दिनांक ७-२-२०११ को तेल, दही, शक्कर और घी इन चार रसों का आजीवन के लिये त्याग कर दिया। दिनांक ७-११-२०११ के दिन आपको गणधराचार्यश्री ने **आर्षमार्ग-शिरोमणि**, पूना समाज ने **तपश्चर्या-चक्रवर्ती** और तामिलनाडू की जैन समाज ने **जिनशासनप्रदीप**, इन उपाधियों से विभूषित किया। अतिशय क्षेत्र पैठन की समाज ने आपको दिनांक ४-५-२०१२ के दिन **आकिंचन्य-श्रमणेश्वर** इस पद से अलंकृत किया।

उसी दिन आपने नमक का आजीवन के लिये त्याग कर दिया और साथ में पाँच फलों का भी आजीवन के लिये त्याग कर दिया। केवल चार अन्न के अतिरिक्त शेष अन्न का त्याग किया। समय-समय पर आप अपने त्याग में अभिवृद्धि करते रहते हैं।

आपका ज्ञान और ध्यान नित्य ही प्रवर्द्धमान रहें, आपके द्वारा की जाने वाली जिनवाणी की सेवा नित्य प्रति प्रगति करती रहें, आपका शिष्यरूपी उपवन निरन्तर हँसता-मुस्कुराता रहें, आपके द्वारा अपूर्व धर्मप्रभावना हों, आपकी अमृतवाणीरूपी गंगा में अवगाहन करके भव्यसमूह शान्ति प्राप्त करें, आपको स्वास्थ्यरूपी समृद्धि की प्राप्ति हों, आपकी कीर्ति जगत्-व्यापिनी बन कर जग के मैल का अपहरण करें, आप दीर्घायु होवें-मैं यही मंगल कामना करती हूँ।

हमारे परम सहयोगी

परम पूज्य मुनिप्रवरश्री सुहितसागर जी महाराज के चरणों में शत-शत नमन।



मुनिदीक्षा २३-३-२०१२ फलटन (महाराष्ट्र)

सल्लेखना ३१-३-२०१२ फलटन (महाराष्ट्र)

परमपूज्य मुनिश्री सुहितसागर जी महाराज

विनयावनत

श्रीमती विमलादेवी रतनलाल जी पाटनी

डॉक्टर राजेशकुमार, इंजिनियर नीलेशकुमार,

श्रीमती कश्मिरा जैन एवं समस्त पाटनी परिवार

।। श्रीमदादिमहावीरकीर्तिसन्मतिसुविधिसूरिवरेभ्यो नमः ।।

परम्परानायक



परम पूज्य सम्यक्त्व-शिरोमणि, चारित्र-चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

द्वितीय पट्टाधीश



परम पूज्य तीर्थभक्त-शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

तृतीय पट्टाधीश



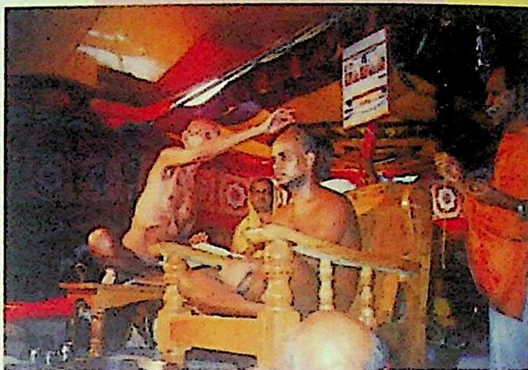
परम पूज्य सिद्धान्त-चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

चतुर्थ पट्टाधीश



परम पूज्य तपश्चर्या-चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

आचार्यपदसंस्कार



नरवाली (राजस्थान)

20 जून 2004

परम पूज्य महातपोमार्तण्ड, आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज कर-कमलों से मुनिश्री सुविधिसागर जी महाराज का आचार्यपदसंस्कार करते हुए

परम पूज्य आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज ही अंकलीकर परम्परा के

चतुर्थ-पट्टाधीश क्यों ?

卐 आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज ने अपने कर-कमलों से अपने पाँच शिष्यों पर आचार्यपद के संस्कार किये। उन सभी में ये एकमात्र ऐसे आचार्य हैं, जिनका संस्कार करते समय गुरुदेव ने उन्हें सिंहासन पर बिठाया और स्वयं पाटे पर बैठे।

卐 गुरुदेव ने स्वयं अपने कर कमलों से पैरों पर चन्दन से तिलकदान क्रिया की।

卐 ये ऐसे इकलौते शिष्य हैं, जिन्हें प्रायश्चित्तशास्त्र स्वयं गुरुदेव ने पढ़ाया।

卐 ये ऐसे इकलौते शिष्य हैं, जिन्हें गुरुदेव के द्वारा सिंहासन प्रदान किया गया।

卐 ये ऐसे इकलौते शिष्य हैं, जिनके उत्तराधिकारित्व की उद्घोषणा 20 जून 2004 को स्वयं गुरुदेव ने अपने श्रीमुख से की थी।

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज की

उद्घोषणा

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी - जुलाई 2004) (अक्षयज्योति - अक्टूबर 2004)